16 वर्ष (2006-2021)

अध्यायवार मुख्य परीक्षा हल प्रश्न-पत्र

राजनीति विज्ञान एवं अंतरराष्ट्रीय संबंध

प्रश्नोत्तर रूप में

सिविल सेवा परीक्षा के लिए

संघ एवं राज्य लोक सेवा आयोग तथा अन्य समकक्ष प्रतियोगी परीक्षाओं के लिए समान रूप से उपयोगी

संपादकः एन. एन. ओझा
(सिविल सेवा परीक्षाओं के मार्गदर्शन में 30 से अधिक वर्षों का अनुभव)
लेखन एवं प्रस्तुतिः क्रॉनिकल संपादकीय समूह

CHRONICLE
Nurturing Talent Since 1990

राजनीति विज्ञान एवं अंतरराष्ट्रीय संबंध
प्रश्नोत्तर रूप में

बुक कोडः 069

संस्करण 2022

मूल्यः ₹ 390/-

ISBN : 978-81-956502-7-9

प्रकाशक
क्रॉनिकल पब्लिकेशंस प्रा. लि.

कॉरपोरेट ऑफिसः
ए-27डी, सेक्टर-16, नोएडा-201301,
फोन नं: 0120-2514610-12,
E-mail : info@chronicleindia.in

संपर्क सूत्रः
संपादकीय : 9582948817, editor@chronicleindia.in
ऑनलाइन सेल सहयोगः 9582219047, onlinesale@chronicleindia.in
तकनीकी सहयोग : 9953007634, Email Id: it@chronicleindia.in
विज्ञापन : 9953007627, 9891601320, advt@chronicleindia.in
सदस्यता : 9953007629, 9953007628, Subscription@chronicleindia.in
प्रिंट संस्करण सेल : 9953007630, 9953007631, circulation@chronicleindia.in

सर्वाधिकार सुरक्षित © क्रॉनिकल पब्लिकेशंस प्रा. लि.: इस प्रकाशन के किसी भी अंश का प्रतिलिपिकरण, ऐसे यंत्र में भंडारण जिससे इसे पुनः प्राप्त किया जा सकता हो या स्थानान्तरण, किसी भी रूप में या किसी भी विधि से- इलेक्ट्रॉनिक, यांत्रिक, फोटो-प्रतिलिपि, रिकॉर्डिंग या किसी और ढंग से, प्रकाशक की पूर्व अनुमति के बिना नहीं किया जा सकता।

पुस्तक में प्रकाशित सामग्री उपरोक्त विषय पर प्रकाशित पुस्तकों/जर्नल/रिपोर्ट/ऑनलाइन कंटेंट आदि से संकलित है। लेखक/संकलनकर्ता/प्रकाशक, प्रकाशित सामग्री की मूल लेखन का दावा नहीं करता। प्रकाशित सामग्री को पूर्णतः त्रुटि रहित बनाने का प्रयास किया गया है, फिर भी किसी भी प्रकार के त्रुटि के लिए क्षतिपूर्ति का दावा प्रकाशक/लेखक द्वारा स्वीकार नहीं किया जाएगा। शंका की स्थिति में पाठक स्वयं भारत सरकार के दस्तावेज व अन्य स्त्रोतों के माध्यम से जांच कर सकते हैं सभी विवादों का निपटारा दिल्ली न्यायिक क्षेत्र में होगा।, **मुद्रकः** एस के एंटरप्राइजेज, मुंडका, उद्योग नगर, इंडस्ट्रियल एरिया, नई दिल्ली - 110041

पुस्तक के संबंध में

सिविल सेवा मुख्य परीक्षा के नवीनतम पाठ्यक्रम पर आधारित विगत 16 वर्षों (2006-2021) के प्रश्नों का अध्यायवार हल

प्रश्नों को हल करने की प्रकृति: पुस्तक में प्रश्नों के उत्तर को मॉडल हल के रूप में दिया गया है। प्रश्नों को हल करते समय इस बात का ध्यान रखा गया है कि उत्तर सारगर्भित हो, तथा पूछे गए प्रश्नों के अनुरूप हो। पुस्तक में प्रश्नों के इतर भी विशिष्ट जानकारी को उत्तर में समाहित किया गया है, ताकि अभ्यर्थी इसका उपयोग न सिर्फ हल प्रश्न पत्र के रूप में, बल्कि अध्ययन सामग्री के रूप में भी कर सकें।

पुस्तक का उपयोग कैसे करें?: इस पुस्तक का उपयोग अभ्यर्थी अपने उत्तर लेखन शैली में सुधार लाने तथा प्रश्नों की प्रवृति व प्रकृति को समझने के लिये कर सकते हैं। किसी भी परीक्षा के विगत वर्षों के प्रश्न इसमें सबसे लाभदायक होते हैं। पुस्तक में दी गई सामग्री का इस्तेमाल बिंदुवार, निश्चित शब्द सीमा का पालन, उप-शीर्षक एवं आरेख आदि का प्रयोग अभ्यर्थी अपने उत्तर लेखन शैली के अभ्यास हेतु आधुनिक परिपेक्ष में कर सकते हैं। पुस्तक में प्रश्नों के उत्तर उसके सम्बंधित वर्ष के अनुसार ही दिया गया है।

राजनीति विज्ञान-एक वैकल्पिक विषय के रूप में: हाल के वर्षों में सिविल सेवा की परीक्षा हेतु उपलब्ध विभिन्न वैकल्पिक विषयों के पाठ्यक्रमों में अत्यधिक बदलाव हुए हैं एवं इस बदलाव के पश्चात 'राजनीति विज्ञान' विषय की लोकप्रियता एक वैकल्पिक विषय के रूप में काफी तेजी से बढ़ी है। इस विषय की लोकप्रियता का एक सबसे महत्वपूर्ण कारण इसका राज्य, समाज, राष्ट्रीय व अन्तरराष्ट्रीय क्षेत्र में घटने वाली राजनैतिक व अन्य घटनाओं का अवलोकन, अनुशीलन कर, अपने अभिमत का निर्माण करने की संकल्पना पर आधारित होना है, जिसका अध्ययन कर अभ्यर्थी अपनी स्वयं की विचारधारा विकसित कर सकता है। एक बार समझ विकसित हो जाने पर इस विषय में रटने की आवश्यकता नहीं पड़ती। इस विषय की दूसरी विशेषता है सही रणनीति की मदद से न्यूनतम समय में तैयारी, ताकि अच्छे अंक भी हासिल हों और कोई जोखिम भी न रहे। राजनीति विज्ञान विषय का अध्ययन आपके दृष्टिकोण को व्यापक बनाता है, जिससे आप आधारभूत जानकारी के साथ, राजनीतिक क्षेत्र से सम्बन्धित सैद्धान्तिक, संस्थागत व व्यवहारिक पहलुओं व उनमें आने वाले त्वरित परिवर्तनों को प्रेरित करने वाले कारकों को समझ सकने की वैज्ञानिक दृष्टि पाते हैं। यह दृष्टि आपको न सिर्फ सामान्य अध्ययन बल्कि साक्षात्कार में भी अच्छे अंक लाने में सहयोग करता है।

यह पुस्तक छात्रों को संघ लोक सेवा आयोग मुख्य परीक्षा के आलावा राज्य लोक सेवा आयोगों (उत्तर प्रदेश, बिहार, उत्तराखंड, मध्य प्रदेश, राजस्थान, हिमाचल प्रदेश, एवं झारखण्ड) के बदले हुए पाठ्यक्रम में आयोजित होने वाले सिविल सेवा मुख्य परीक्षा के राजनीति विज्ञान एवं अंतरराष्ट्रीय संबंध के प्रश्न पत्र की तैयारी में उपयोगी साबित होगा।

संपादक

अनुक्रमणिका

विषयवार हल प्रश्न-पत्र, 2006-2021

सिविल सेवा मुख्य परीक्षा, 2021 (प्रथम प्रश्न-पत्र) 1-13
सिविल सेवा मुख्य परीक्षा, 2021 (द्वितीय प्रश्न-पत्र) 14-26

प्रथम प्रश्न – पत्र

खंड-क

- राजनीतिक सिद्धांत अर्थ और दृष्टिकोण 5-12
- राज्य के सिद्धांत: उदार, नवउदार, मार्क्सवादी, बहुवचनवादी, औपनिवेशिक और नारीवादी 13-27
- न्याय: रावल का न्याय सिद्धांत 28-32
- समानता और स्वतंत्रता के बीच सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक संबंध 33-36
- राजनीतिक सिद्धांत अर्थ और दृष्टिकोण 37-42
- लोकतंत्र: शास्त्रीय और समकालीन सिद्धांत 43-53
- शक्ति, वर्चस्व, विचारधारा और वैधता की अवधारणा 54-57
- राजनीतिक विचारधारा: उदारवाद, समाजवाद, मार्क्सवाद, फासीवाद, गांधीवाद और नस्लवाद 58-67
- भारतीय राजनीतिक विचार: धर्मशास्त्र, अर्थशास्त्र और बौद्ध परंपराएं 68-77
- पश्चिमी राजनीतिक विचारधारा 78-98

खंड-ख

- भारतीय राष्ट्रवाद: भारत के स्वतंत्रता संग्राम की राजनीतिक रणनीतियां 99-107
- भारतीय संविधान का निर्माण: ब्रिटिश शासन की अवधारणाएं; विभिन्न सामाजिक और राजनीतिक दृष्टिकोण 108-109
- भारतीय संविधान की प्रमुख विशेषताएं 110-124
- केंद्र सरकार के प्रमुख अंग 125-133
- ग्रासरूट लोकतंत्र: पंचायती राज और नगरपालिका सरकार 134-141
- वैधानिक संस्थान/आयोग 142-151

- संघवाद: संवैधानिक प्रावधान.....152–159
- योजना और आर्थिक विकास.....160–166
- भारतीय राजनीति में जाति, धर्म और नस्ल.....167–174
- पार्टी सिस्टम: राष्ट्रीय और क्षेत्रीय राजनीतिक दलों, पार्टियों के विचाराधात्मक और सामाजिक आधार.....175–182
- सामाजिक आंदोलन.....183–190

द्वितीय प्रश्न – पत्र

खंड–क

- तुलनात्मक राजनीति: प्रकृति और प्रमुख दृष्टिकोण.....191–196
- तुलनात्मक परिप्रेक्ष्य में राज्य.....197–204
- प्रतिनिधित्व और भागीदारी की राजनीति.....205–211
- वैश्वीकरण: विकसित और विकासशील समाजों के जबाव.....212–220
- अंतरराष्ट्रीय संबंधों के अध्ययन के दृष्टिकोण.....221–231
- अंतरराष्ट्रीय संबंधों में महत्वपूर्ण अवधारणाएं.....232–242
- अंतरराष्ट्रीय राजनीतिक आदेश बदलना.....243–254
- अंतरराष्ट्रीय आर्थिक प्रणाली का विकास.....255–262
- संयुक्त राष्ट्र: परिकल्पना की भूमिका और वास्तविक रिकॉर्ड.....263–274
- विश्व राजनीति के क्षेत्रीयकरण: यूरोपीय संघ, आसियान, एपीईसी, सार्क, नाफ्टा.....275–284
- समकालीन वैश्विक चिंता.....285–298

खंड–ख

- भारतीय विदेश नीति: विदेशी नीति के निर्धारक; नीति बनाने के संस्थान.....299–313
- गैर–संरेखण आंदोलन में भारत का योगदान: विभिन्न चरणों; वर्तमान भूमिका.....314–319
- भारत और दक्षिण एशिया एवं क्षेत्रीय सहयोग.....320–334
- भारत और वैश्विक दक्षिण.....335–340
- भारत और वैश्विक शक्ति केंद्र: यूएसए, ईयू, जापान, चीन और रूस.....341–359
- भारत और संयुक्त राष्ट्र प्रणाली.....360–365
- भारत और परमाणु प्रश्न: धारणाओं और नीति को बदलना.....366–373
- भारतीय विदेश नीति में हाल के घटनाक्रम.....374–387

◆◆❖◆◆

सिविल सेवा मुख्य परीक्षा, 2021 (प्रथम प्रश्न-पत्र)

राजनीति विज्ञान एवं अन्तरराष्ट्रीय संबंध

खंड-क

राजनीतिक सिद्धांत अर्थ और दृष्टिकोण

प्र. स्वीकारात्मक कार्यवाही

उत्तर: अफरमेटिव एक्शन या स्वीकारात्मक/सकारात्मक कार्यवाही की व्यवस्था समानता लाने का एक उपकरण है। समानता का आशय समान लोगों के साथ समान व्यवहार करना एवं असमान लोगों के साथ असमान व्यवहार करने से है।

- अफरमेटिव एक्शन की व्यवस्था अमेरिका में प्रचलित है, जिसके द्वारा अश्वेतों के सामाजिक, आर्थिक, एवं शैक्षणिक उत्थान के लिए सरकार विश्वविद्यालय द्वारा कुछ विशेष उपाय एवं प्रबंध किए जाते हैं।
- सकारात्मक क्रिया के अंतर्गत अमेरिका में विश्वविद्यालयों में अश्वेतों के लिए कम अंकों पर प्रवेश दिया गया। अश्वेतों के लिए विश्वविद्यालय के साथ-साथ मीडिया में भी आरक्षण प्रदान किया गया है ताकि अमेरिका में सभी वर्ग को मुख्य धारा से जोड़ा जा सके।
- भारतीय संविधान में अवसर की समानता को संरक्षणात्मक विभेद (Reverse Discrimination) या विधि के समान संरक्षण की संज्ञा दी जाती है।
- इसके अंतर्गत पिछड़े वर्ग के लोगों को सरकारी सेवाओं में आरक्षण दिया गया है जिसके तहत पिछड़े वर्ग को 21 प्रतिशत अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति को 22.5 प्रतिशत तथा आर्थिक रूप से कमजोर (EWS) को 10 प्रतिशत आरक्षण प्रदान किया गया है।
- यह विभेद संरक्षणात्मक है क्योंकि समाज के वंचित वर्गों के संरक्षण व उत्थान के लिए यह विभेद आवश्यक है। भारत में समाज के समावेशी विकास के लिए भी महत्वपूर्ण है।
- अमेरिकी स्वतंत्रता घोषणापत्र में कहा गया है कि सभी लोग जन्म से समान हैं और निर्माता में सभी मनुष्यों को समान अधिक दिया है।

प्र. राजनीतिक विचार के रूप में परिणाम की समानता

उत्तर: राजनीतिक विचार के रूप में परिणामों की समानता का समर्थन मार्क्सवादी विचारक करते हैं। परिणामों की समानता का आशय, सभी व्यक्तियों की आर्थिक स्थिति को सामान बना देना है।

- परिणामों की समानता के अंतर्गत मार्क्सवादियों ने समाज से सामाजिक एवं आर्थिक विषमता को पूर्ण रूप में समाप्त करने का नारा दिया है। उनका मानना है कि पूंजीवादी व्यवस्था की समानता के बाद ही वास्तविक समानता स्थापित हो सकती है।
- विद्वान मिलोवन जिलास ने अपनी पुस्तक The New Class (1951) में कहा कि सामाजवादी समाज में समानता केवल दिखावा है। वास्तविक रूप में पार्टी के मुट्ठीभर पदाधिकारियों ने व्यवस्था पर नियंत्रण कर रखा है।
- जेम्स बर्नहम ने अपनी पुस्तक "The Management Revolution (1947) में प्रबंधकीय क्रांति की चर्चा करते हुए आधुनिक समाज को उत्तर औद्योगिक समाज की संज्ञा दी उनके अनुसार आधुनिक समाज में व्यवसायी और तकनीकी विशेषज्ञ महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह कर रहे हैं। इसलिए न तो पूंजीपति प्रधान हैं न ही सर्वहारा वर्ग।
- मार्क्सवादी राज्य को न तो प्राकृतिक मानते हैं न ही कल्याणकारी बल्कि राज्य की उत्पत्ति इसलिए हुई कि समाज दो वर्गों के बीच विभाजित हो गया और पूंजीपति वर्ग द्वारा निजी संपत्ति को बनाए रखने के लिए राज्य का निर्माण किया गया।
- राजनीतिक चिंतन में मार्क्सवाद उत्पादन के साधनों पर सामाजिक स्वामित्व द्वारा वर्गविहीन समाज की स्थापना के संकल्प की साम्यवादी विचारधारा है। मार्क्सवादियों का मानना है कि परिणामों की समानता राजनीतिक रूप से पूंजीवादी की समाप्ति से ही प्राप्त है।

प्र. रॉल्स ने उदारवाद में न्याय के विचार को कैसे समृद्ध किया?

उत्तर: जॉन राल्स एक उदारवादी विचारक हैं, जिन्होंने उदारवादी व्यवस्था के अंतर्गत एक न्यायपूर्ण समाज स्थापित करने का प्रयास किया। वे हावर्ड विश्वविद्यालय में दर्शनशास्त्र के प्राध्यापक थे।

- 1971 में उनकी रचना "A Theory of Justice" प्रकाशित हुई। जिसमें सामाजिक न्याय की संकल्पना विकसित करके रॉल्स को सामाजवादी नैतिकता का उदारवादी चिंतक माना गया है।
- रॉल्स के अनुसार न्याय समाज का केंद्रीय गुण है मानवीय समाज द्वारा न्याय के नियमों का निर्माण किया गया है। अत: न्याय के नियमों का निर्माण किया गया है। अत: न्याय, मानव के तार्किक चयन का परिणाम है। रॉल्स ने "अज्ञान के पर्दे" की कल्पना की जहाँ व्यक्ति को अपनी प्रतिभा व क्षमता का ज्ञान नहीं था और भविष्य के समाज में उसकी स्थिति क्या होगी उसके विषय में उसे ज्ञान नहीं था।
- अत: इस स्थिति में जब व्यक्तियों ने परस्पर समझौता करके न्यायपूर्ण समाज के निर्माण का प्रयत्न किया तो उन्होंने स्वयं की स्थिति को सबसे वंचित रूप में रखा।

जॉन राल्स का वरीयता नियम: जॉन रॉल्स न्याय के सिद्धांत में सर्वप्रथम स्वतंत्रता को प्राथमिकता देते हैं। उनके अनुसार, स्वतंत्रता का अधिकार प्रमुख या प्राथमिक है। यह अधिकार सभी को समान रूप से प्राप्त होगा। स्वतंत्रता को केवल स्वतंत्रता के लिए ही सीमित किया जा सकता है, अन्यथा नहीं।

दूसरी वरीयता रॉल्स अवसर की समानता को देते हैं। तीसरी वरीयता न्यूनतम स्थिति में रहने वाले व्यक्तियों का कल्याण है। उनके अनुसार प्रत्येक प्रकार की सामाजिक-आर्थिक विषमता समाप्त नहीं की जा सकती। सामाजिक-आर्थिक विषमता स्वीकार योग्य है। यदि वह समाज के न्यूनतम व्यक्तियों के लिए अधिकतम लाभकारी है।

रॉल्स ने प्रक्रियात्मक न्याय व तत्वात्मक न्याय में समन्वय स्थापित किया। पूंजीवादी अर्थव्यवस्था में कल्याणकारी राज्य द्वारा लोगों की प्राथमिक वस्तुओं के समान वितरण के द्वारा न्याय संभव है।

रॉल्स के न्याय सिद्धांत को अधिकतम न्यूनतम सिद्धांत भी कहा जाता है। जिसका अभिप्राय है, समाज में न्यूनतम स्थिति में रहने वाले लोगों के लिए अधिकतम लाभ।

रॉल्स का न्याय कांट के आदर्शवादी विचारों पर आधारित है। रॉल्स का प्रसिद्ध कथन है कि "आत्मन साध्य से पहले है" (The self is prior to its ends) जो कांट की मान्यता 'व्यक्ति स्वयं में साध्य है' से प्रभावित है। रॉल्स ने व्यक्ति की गरिमा को अत्याधिक महत्वपूर्ण माना। समाज में पारस्परिक लाभ के लिए एक सहयोगात्मक चेष्टा की संकल्पना की।

रॉल्स के न्याय की अवधारणा में स्वतंत्रता व अवसर की समानता का बेहतर मिश्रण है तथा न्याय की प्राप्ति लोकतांत्रिक संवैधानिक मार्ग को ज्यादा सहज व सुलभ माना। रॉल्स ने न्याय व कल्याणकारी उदारवादी राज्य का अंतर्संबंध प्रभावी रूप से स्थापित किया, जो कि 20वीं सदी का सबसे मौलिक योगदान माना जाता है।

राज्य के सिद्धांत: उदार, नवउदार, मार्क्सवादी, बहुवचनवादी, औपनिवेशिक और नारीवादी

प्र. राज्य की नारीवादी आलोचना

उत्तर: नारीवादी शब्द का पहली बार उपयोग काल्पनिक समाजवादी चार्ल्स फेरियर ने 1837 में महिलाओं के लिए समान अधिकार का उल्लेख करने के लिए किया था। नारीवाद का तात्पर्य राजनीतिक, आर्थिक व्यक्तिगत और सामाजिक, लैंगिक समानता को स्थापित करने और प्राप्त करने से है।

नारीवाद विचारधारा, उत्तर-आधुनिक विचारधारा है। इसकी उत्पत्ति द्वितीय विश्व युद्ध के पश्चात हुई। यद्यपि इसका मूल आधार मैरी वोलस्टोनक्राफर तथा मिल के विचारों में भी पाया जाता है। इन विचारकों ने पुरुष व महिलाओं के मध्य सार्वजनिक जीवन में भेदभाव समाप्त करने पर बल दिया था। इन विचारकों ने पुरुष व महिलाओं के समान कार्य के लिए समान वेतन का समर्थन किया तथा महिलाओं के लिए भी समान स्वतंत्रता और अधिकारों का समर्थन किया।

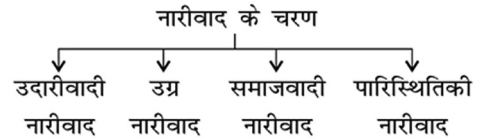

नारीवादियों के अनुसार राज्य का निर्माण पुरुषों द्वारा किया गया है, अत: नारी की समस्या पर कभी विचार नहीं किया गया है। अत: नारी की समस्या पर कभी विचार नहीं किया गया। राज्य निर्माण में नारी की भागीदारी नहीं है।

नारीवादी विचारकों के अनुसार परिवार में पिता की प्रधानता, अन्य संगठनों में भी पुरुष की प्रधानता स्थापित करती है। उदाहरण शिक्षा के क्षेत्र में, कार्य के क्षेत्र में, और राजनीति के क्षेत्र में पुरुषों की प्रधानता है। अत: पितृसत्ता का अर्थ, परिवार और बाह्य जीवन में पुरुषों के शासन से है।

प्रसिद्ध नारीवादी विचारक कैट मिलेट के अनुसार पितृ-सत्तात्मक सरकार एक ऐसी संस्थात्मक व्यवस्था है, जिसमें आधी महिलाओं की जनसंख्या पर आधे पुरुषों का नियंत्रण है। अत: पितृसत्तात्मक राज्य का स्वरूप ही सोपानिक है।

नारीवादी विचारकों के अनुसार सभी प्रकार के राज्यों, समाजों तथा संस्कृतियों में और विभिन्न कालक्रम में कम या अधिक महिलाओं का शोषण होता रहा है। अत: नारीवादी लैंगिंक समता वाले राज्य का समर्थन करते हैं।

प्र. महिला मताधिकार पर जे.एस. मिल के विचार

उत्तर: जे.एस. मिल ने अपनी रचना "The Subjection of Women (1869) में महिलओं को सार्वजनिक क्षेत्र में समानता के लिए पुरजोर समर्थन किया।

- मिल के अनुसार पुरुष और महिलाओं की बौद्धिक क्षमता में कोई भेद नहीं होता है। अत: सार्वजनिक जीवन में दोनों की सहभागिता समान रूप में होनी चाहिए। तथा उन्होंने महिलाओं को समान मताधिकार देने का समर्थन किया।
- मिल ने कहा कि हम मानवीय समानता का समर्थन तो करते हैं लेकिन लैंगिक समानता का नहीं/यह हमारे समाज की एक बड़ी विसंगति है।
- मिल ने सार्वजनिक कार्य के लिए दिए जा रहे पुरुष और महिलाओं के वेतन में असमानता का भी विरोध किया। मिल ने महिलाओं को संपत्ति के अधिकार का समर्थन किया।

- 1865 से 1868 तक, मिल ने संसद सदस्य के रूप में कार्य किया। 1866 में वह मित्र रिचर्ड पंकहर्स्ट द्वारा लिखित बिल पेश करते हुए, महिलाओं को वोट दिए जाने का आहवान करने वाले पहले सांसद बने। मिल ने अतिरिक्त मताधिकार विस्तार सहित अन्य सुधारों के साथ-साथ महिलाओं की वोट की वकालत करना जारी रखा। उन्होंने 1867 में स्थापित सोसाइटी फॉर विमेन सफरेज के अध्यक्ष के रूप में कार्य किया।
- मिल सदियों पुरानी पुरुष वर्चस्ववादी व्यवस्था की कटू तथा तर्कपूर्ण आलोचना करते हैं। वे ये भी कहते थे कि पुरुषों को भी स्त्रियों के इस आंदोलन का हिस्सा बनना होगा तभी व्यापक बदलाव संभव है। मुख्यत: वे एक सुधारवादी थे लेकिन स्त्री विषय पर उनके विचार क्रांतिकारी थे, जो आज भी प्रासंगिक हैं। ये स्त्री प्रश्न को दार्शनिक और राजनीतिक धरातल के साथ-साथ व्यवहारिक धरातल पर भी काफी सोचने समझने की दिशा देते हैं।

प्र. मार्क्स के 'अलगाव' की अवधारणा पूंजीवाद की वास्तविकता का एक अनिवार्य भाग है। व्याख्या कीजिए।

उत्तर: मार्क्स ने अपने अलगाव सिद्धांत की धारणा भौतिक जगत के संबंध में रखी, जिसने समाजशास्त्री अवधारणाओं में एक महत्वपूर्ण योगदान दिया। कार्ल मार्क्स के अनुसार अलगाव व्यक्ति की वह दशा है जिसमें उसके अपने कार्य पराई शक्ति बन जाती है, जो कि उसके द्वारा शासित न होकर उससे ऊंची परन्तु उसी के विरुद्ध है।

मार्क्स के विचारों में अलगाववाद की संकल्पना मुख्य है, मार्क्स के अनुसार अलगाववाद को हम निम्नलिखित रूप में देखते हैं-

(i) उत्पादन से अलगाव
(ii) प्रकृति से अलगाव
(iii) समाज से अलगाव
(iv) स्वयं से अलगाव

कार्ल मार्क्स के अलगाव के सिद्धांत में स्तरीकृत सामाजिक वर्गों के समाज में रहने के परिणाम के रूप में लोगों की उनके मानव प्रकृति के पहलुओं से अलगाव का वर्णन किया गया है। स्वयं से अलगाव एक सामाजिक वर्ग का एक यंत्रवत हिस्सा होने का परिणाम है, जिसकी स्थिति एक व्यक्ति को उनकी मानवता से अलग करती है।

अलगाव का सैद्धांतिक आधार यह है कि कार्यकर्ता हमेशा जीवन और भाग्य को निर्धारित करने की क्षमता खो देता है, जब वह अपने कार्यों के निर्देशक के रूप में खुद को सोचने के अधिकार से वंचित हो जाता है। वह पूंजीपति वर्ग द्वारा निर्देशित होते हैं जो उत्पादन के साधनों के मालिक होते हैं, ताकि श्रमिक से अधिकतम लाभ प्राप्त किया जा सके।

चूंकि श्रम के उत्पादों को एक व्यक्ति द्वारा विनियोजित किया जाता है, जिसके हित श्रमिकों के हितों के विपरीत होते हैं, यह व्यवस्था पूंजीवादी और श्रमिक के बीच विरोधी वर्ग संबंध को व्यक्त करती है। इसके अलावा, यह स्वयं मजदूर वर्ग के भीतर एकजुटता संबंधों के नुकसान को दूर करने के लिए भी काम कर सकता है। अत: अलगाववाद की अवधारणा के अंतर्गत युवा मार्क्स पूंजीवाद के मनोवैज्ञानिक दुष्प्रभाव बताता है। ऐसे में कहा जा सकता है कि मार्क्स के अलगाववाद की अवधारणा पूंजीवाद की वास्तविकता का एक अनिवार्य भाग है।

समानता और स्वतंत्रता के बीच सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक संबंध

प्र. क्या मानव अधिकारों की सार्वभौमिक अवधारणा हो सकती है? अपने तर्क दीजिए।

उत्तर: किसी भी व्यक्ति के जीवन, स्वतंत्रता, समानता और सम्मान का अधिकार ही मानव अधिकार है। मनुष्य के रूप में जन्म लेने के साथ मिलने वाला अधिकार मानवाधिकार की श्रेणी में आता है। संविधान में बनाए गए अधिकारों से बढ़कर महत्व मानवाधिकारों का माना जाता है।

- प्रथम व द्वितीय विश्व युद्ध के मध्य जर्मनी में जिस प्रकार प्रजातिवाद के आधार पर मानव नरसंहार हुआ वह अत्यंत बर्बर, अमानवीय और घृणित था। अत: द्वितीय विश्व युद्ध के बाद 10 दिसंबर 1948 को मानवाधिकार के घोषणा पत्र को संयुक्त राष्ट्र द्वारा सार्वभौमिक रूप से स्वीकार किया गया, तो यह मानवता के लिए बहुत बड़ी उपलब्धि थी।
- हालांकि इस्लामी देशों विशेषत: सउदी अरब ने मानवाधिकार की संकल्पना पर आपत्ति दर्ज करते हुए कहा कि इस्लामी समाज में धार्मिक स्वतंत्रता व धर्म परिवर्तन का अधिकार नहीं दिया जा सकता।
- अत: मूल प्रश्न उत्पन्न हुआ कि मानवाधिकारों को सार्वभौमिक रूप से कैसे लागू किया जाए? मानवाधिकारों पर सोवियत साम्यवादी खेमे की अलग आपत्ति थी। क्योंकि साम्यवादियों के अनुसार ये मानवाधिकार नहीं बल्कि संपत्तिशाली पूंजीपत्तियों के अधिकार है क्योंकि उदारवादी लोकतांत्रिक देशों में व्यक्ति को नागरिक राजनैतिक अधिकार मुख्य रूप से प्रदान किए जाते हैं। जबकि मार्क्सवादियों ने आर्थिक अधिकारों को मूल या मुख्य माना।
- अत: मार्क्सवादियों के अनुसार न्यूनतम आर्थिक परिस्थितियों व रोजगार का अधिकार मुख्य है। इसके विपरीत उदारवादी देशों का मानना है कि साम्यवादी व्यवस्थाएं सर्वाधिकारवादी है, जहां व्यक्ति को अभिव्यक्ति व उपासना की स्वतंत्रता प्राप्त नहीं है। एक दल का निरंकुश शासन है व व्यक्ति राजनैतिक सहभागिता से वंचित है।
- वस्तुत: इन वैचारिक विरोधों को देखते हुए वर्ष 1966 में संयुक्त राष्ट्र संघ के मानवाधिकारों के दस्तावेजों में सिविल राजनैतिक व सामाजिक एवं आर्थिक अधिकारों का समिश्रण किया गया।
- इसलिए मूल प्रश्न है कि क्या पूरे विश्व में मानवाधिकारों का एकीकृत रूप स्वीकार किया जा सकता है? व्यावहारिक रूप में ऐसा संभव प्रतीत नहीं होता। क्योंकि सोवियत संघ के विघटन के पश्चात चीन जैसे साम्यवादी देश व अमेरिका जैसे उदारवादी देशों के मध्य मानवाधिकारों को लेकर विवाद है।
- अमेरिका ने चीन पर सदैव मानवाधिकारों के उल्लंघन का आरोप लगाया है। विशेषकर तिब्बती शरणार्थी व दलाईलामा के मुद्दे पर चीनी सरकार की विश्वव्यापी आलोचना की जाती है। यद्यपि गैर लोकतांत्रिक देश म्यानमार पर भी मानवाधिकार के उल्लंघन के आधार पर प्रतिबंध आरोपित किए गए है।

सिविल सेवा मुख्य परीक्षा, 2021 (द्वितीय प्रश्न-पत्र)

राजनीति विज्ञान एवं अन्तरराष्ट्रीय संबंध

खंड-क

तुलनात्मक राजनीतिः प्रकृति और प्रमुख दृष्टिकोण

प्र. राजनीति के तुलनात्मक विश्लेषण के राजनीतिक अर्थव्यवस्था उपागम की विवेचना कीजिए।

उत्तरः तुलनात्मक राजनीति के आधुनिक उपागम में संविधान एवं सरकार के अध्ययन के बनाए राजनीतिक एवं आर्थिक संरचना के अध्ययन पर बल दिया गया। इसलिए राजनीतिक अर्थशास्त्र का विचार राजनीतिक समाजशास्त्र के निकट प्रतीत होता है।

राजनीतिक अर्थशास्त्र के द्वारा आर्गेन्सकी ने वृद्धि और विकास के विभिन्न चरणों की खोज (Stages of growth) की बात की, जिनके अनुसार राज्य का विकास निम्नलिखित चरणों से होकर गुजरता है-

(i) एकीकरण- राष्ट्र - राज्यों का एकीकरण
(ii) औद्योगिकरण-उत्पादन के तरीके में बदलाव
(iii) कल्याण - कल्याणकारी राज्य
(iv) प्रचुरता/संपन्नता-राज्य द्वारा शिक्षा, स्वास्थ्य निःशुल्क उपलब्ध कराई जाती है।

विद्वान चिलकोटे ने अपनी किताब Theories of Comperative Politics में राजनीतिक अर्थशास्त्र को निम्न रूप में चित्रित किया है- इनके अनुसार राजनीतिक अर्थशास्त्र के अध्ययन का मूल उद्देश्य राष्ट्रीय संपत्ति में वृद्धि करना है। इनकी मान्यता के अनुसार मनुष्य मूलतः स्वार्थी होता है। इसलिए व्यक्ति के स्वभाव को निर्यंत्रित करने की आवश्यकता होती है। इनके अनुसार राज्य का सबसे बड़ा दायित्व सुरक्षा बनाए रखना है, इसके लिए राष्ट्रीय संपत्ति में वृद्धि आवश्यक है व इसके लिए राज्य का आर्थिक गतिविधियों में हस्तक्षेप आवश्यक है।

इंग्लैण्ड के राजनीतिक अर्थशास्त्रियों ने राजनीतिक अर्थशास्त्र के सिद्धांत का निर्माण किया है इनमें एडम स्मिथ, रिकार्डो एवं माल्यस शामिल है। इन विचारकों ने तुलनात्मक लाभ के सिद्धांत का समर्थन करते हुए कहा कि प्रत्येक समुदाय कुछ विशेष वस्तुओं के निर्माण में कुशल होता है। इसलिए बाजार में सभी को लाभ प्राप्त होता है।

आलोचकों के अनुसार उदारवादी राजनीतिक अर्थव्यवस्था का समर्थन आर्थिक रूप से शक्तिशाली राष्ट्रों ने किया जबकि अशक्त राष्ट्रों ने सदैव संरक्षणकारी नीतियों का प्रयोग किया। इसलिए द्वितीय विश्व युद्ध के पश्चात तीसरी दुनिया के अधिकांश देशों ने राजनीतिक अर्थशास्त्र के मॉडल को अस्वीकृत कर दिया।

प्र. "राजनीतिक दल एवं दबाव समूह लोकतंत्र के लिए अपरिहार्य है।" टिप्पणी कीजिए।

उत्तरः दबाव समूह समाज में विशिष्ट हितों का प्रतिनिधित्व करते हैं, जिसे ऑमण्ड एवं पॉवेल ने हितों के अभिव्यक्तिकरण के रूप में अभिव्यक्त किया है, जबकि राजनीतिक दल समाज में विद्यमान सभी के हितों को संचित या एकत्रित करने का प्रयास करते हैं जिसे ऑमण्ड एवं पॉवेल ने हित समूहीकरण (Intrest Aggregation) का नाम दिया है।

- राजनीतिक दल का मूल उद्देश्य लोकतंत्र में सत्ता की प्राप्ति है अथवा सरकार का निर्माण करना है लेकिन दबाव समूह सरकार को प्रभावित करने का प्रयास करते हैं। एक व्यक्ति एक साथ अनेक दबाव समूहों का सदस्य हो सकता है, इसलिए दबाव समूहों की सदस्यता सर्वसमावेशी होती है जबकि कोई व्यक्ति केवल एक राजीतिक दल का ही सदस्य हो सकता है, इसलिए राजनीतिक दलों की स्थापना अन्नय (Exclusive) होती है।
- राजनीतिक दल जनमत को प्रकट करते हैं। ये दल लोकतंत्र में सदैव सक्रिय रहते हैं, केवल चुनाव के समय नहीं, बल्कि जनता को आंदोलित एवं प्रेरित करते रहते हैं। इनका मूल उद्देश्य जनता एवं आम नागरिकों को शिक्षित और प्रशिक्षित करके सत्ता प्राप्त करना होता है, ताकि लोकतांत्रिक प्रक्रिया में जनता के हित के मुताविक बदलाव ला सके और कल्याणकारी कार्य कर सके।
- वही दबाव समूह प्रतिनिधित्व को ज्यादा शक्तिशाली बनाते हैं जिन्हें राजनीतिक दल उपेक्षित कर देते हैं। दबाव समूह मतदाताओं को शिक्षित करते हैं। सार्वजनिक नीतियों के निर्माण में सहायक है, क्योंकि ये समूह परिचर्चा एवं बहस को बढ़ावा देते हैं।

दबाव समूह सरकार की शक्ति नियंत्रित करते हैं। इसलिए स्वतंत्रता की वृद्धि करने में सहायक है। परिणामस्वरूप लोकतंत्र में स्वस्थ नागरिक समाज का निर्माण होता है।

दबाव समूह सरकार एवं लोगों के मध्य एक सेतु का कार्य करते हैं, अतः राजनीतिक स्थायित्व में वृद्धि होती है। राजनीतिक दल सत्ता प्राप्त जन हित के नीतियों को लागू करते हैं। इस प्रकार लोकतंत्र में राजनीतिक दल एव दबाव समूह अपरिहार्य है।

वैश्वीकरणः विकसित और विकासशील समाजों के जबाव

प्र. विकासशील देशों के संदर्भ में निर्वाचन प्रणालियों एवं विभेदों का दलीय व्यवस्थाओं के नियपण के प्रभाव की व्याख्या कीजिए।

उत्तरः विकासशील देशों में निर्वाचन में ज्यादातर सर्वाधिक मत प्रणाली वाली धारणा प्रचलित है, यानि जिसे सर्वाधिक मत मिलता है वह प्रत्याशी चुनाव जीत जाता है। यह जरूरी नहीं है कि वह निर्वाचन क्षेत्र में 50 प्रतिशत मत प्राप्त करें। इस प्रणाली को इकहरी सदस्यीय बहुलवादी व्यवस्था भी कहते है। इसके द्वारा शक्तिशाली एकदलीय सरकार का निर्माण होता है।

- भारत में राज्य सभा और विधान परिषद के चुनाव में एकल संक्रमणीय मत प्रणाली का उपयोग किया जाता है। यह चुनाव की अनुपातिक प्रतिनधित्व पद्धति है। मतदाता के द्वारा केवल एक मत प्रदान किया जाता है परंतु इसका प्रयोग वह वरीयता के आधार पर करता है। इस अनुपातिक प्रतिनिधित्व की प्रणाली को हेयर प्रणाली भी कहते हैं। इसमें जीत के लिए एक निश्चित कोटा प्राप्त करना होता है।
- हालांकि चुनाव के विभिन्न प्रारूप के बावजूद विकासशील देशों में व्यक्तित्व आधारित राजनीतिक दलों का निर्माण होता है। रजनी कोठारी ने अपनी रचना Politics in India (1970) में लिखा है कि भारत में अनेक व्यक्तियों ने राजनीतिक दलों का गठन किया और व्यक्ति की मृत्यु के बाद दल भी समाप्त हो गया। इसलिए विकासशील देशों में राजनीतिक दल के संगठन के बजाय, व्यक्तित्व को महत्व दिया जाता है।
- विकासशील देशों के लिए यह कहा जाता है कि यहां राजनीतिक दल तो हैं लेकिन दलीय प्रणाली नहीं है क्योंकि यह सुनिश्चित रूप से कहना कठिन है कि किस समय कौन सी दलीय प्रणाली विद्यमान रहेगी। जबकि पश्चिमी देशों में दलीय प्रणाली विद्यमान है। जैसे- ब्रिटेन, ऑस्ट्रेलिया व अमेरिका में पिछले सैकड़ों वर्षों से दो दलीय प्रणाली विद्यमान है।
- विकासशील देशों में गुटबाजी या दलबंदी की समस्या एव दल बदल की समस्या गंभीर है और राजनीतिक दलों के सदस्य सदैव दल परिवर्तित करते रहते हैं जबकि विकसित देशों में यह समस्या नहीं है।
- विकसित औद्योगिक देशों में दलों का स्वरूप लोकतांत्रिक हो गया है जबकि विकासशील देशों में राजनीतिक दलों में आंतरिक लोकतंत्र का अभाव है।
- विकासशील देशों में राजनीतिक दल का निर्माण अभी भी जाति, धर्म, नृजातीय पहचानों पर आधारित है जबकि विकसित उत्तर औद्योगिक एवं उत्तर भौतिकवादी समाजों में पर्यावरण संरक्षण के लिए ग्रीन पार्टी का निर्माण हो रहा है। इनमें दलों की भूमिका सत्ता व सरकार के निर्माण के साथ समाज के आधुनिकीकरण एवं सामाजिक कल्याण के यंत्र के रूप में भी प्रयुक्त होती है।
- विकासशील देशों में अभी भी दलों की वैधता स्थापित नहीं हुई है। विकासशील देशों में अभी भी दलीय व्यवस्था संक्रमणकालीन स्थिति में है। इसलिए कही एक दल प्रणाली तो कही द्विदलीय व कही बहुदलीय प्रणाली पायी जाती है।
- भारत में पहले कांग्रेस की वर्चस्व वाली दलीय प्रणाली वही वर्तमान में वर्तमान में भारतीय जनता पार्टी के वर्चस्व वाली दल प्रणाली विद्यमान है। अतः विकासशील देशों में कहा जा सकता है कि दल व्यक्ति केंद्रित होते है। संगठन एवं विचारधारा तथा चुनाव प्रणाली द्वितीयक हो जाती है।

प्र. वैश्वीकरण क्या है? वैश्वीकरण एवं इसके परिणामों के संदर्भ में इतनी गहन बहस क्यों है?

उत्तरः वैश्वीकरण से तात्पर्य स्थानीय या श्रेणीय वस्तुओं या घटनाओं के विश्व स्तर पर रूपांतरण की प्रक्रिया है। इसे एक ऐसी प्रक्रिया का वर्णन करने के लिए भी प्रयुक्त किया जा सकता है जिसके द्वारा पूरे विश्व के लोग मिलकर एक समाज बनाते हैं तथा एक साथ कार्य करते हैं।

- आधुनिक वैश्वीकरण की उत्पत्ति वर्ष 1991 में शीत युद्ध की समाप्ति और सोवियत संघ के विघटन के साथ शुरू हुआ था। वैश्वीकरण एक सीमारहित दुनिया की परकिल्पना करता है या एक ग्लोबल विलेज के रूप में दुनिया की स्थापना का प्रयास करता है।
- वैश्वीकरण मुक्त व्यापार का प्रतिनिधित्व करता है जो वैश्विक विकास को बढ़ावा देता है, रोजगार का सृजन करता है, कंपनियों को अधिक प्रतिस्पर्धा बनाता है और उपभोक्ताओं के लिए कीमते कम करता है।
- वैश्वीकरण विदेशी पूंजी और प्रौद्योगिकी के माध्यम से गरीब देशों को आर्थिक रूप से विकसित होने तथा समृद्ध होने का मौका भी प्रदान करता है।
- वर्तमान समय में वैश्वीकरण के परिणामों के बहस का कारण निम्नलिखित संरक्षणवादी नितीयां है जो विभिन्न देशों द्वारा अपनायी जा रही है।
- वर्ष 2008-09 के वैश्वीक संकट के बाद से वैश्वीकरण में स्थिरता शुरू हो गई। यह बेक्जिट और अमेरिका की अमेरिका फर्स्ट पॉलिसी में परिलक्षित होता है। इसके अलावा व्यापार युद्ध तथा विश्व व्यापार संगठन की वार्ता को बाधित करना वैश्वीकरण के पीछे हटने की एक और मान्यता है।

- ये रूझान वैश्वीकरण विरोधी या संरक्षणवाद की भावना का मार्ग प्रशस्त करते हैं, जो कोविड-19 महामारी के प्रसार के कारण और बढ़ा है।
- भारत सरकार द्वारा अमेरिका के साथ एक लघु व्यापार समझौते के लिए शर्तों पर सहमत होने में विफल रहने के बाद भारतीय अर्थव्यवस्था को मुक्त आयात के लिए नहीं खोलना।
- भारत स्वयं 15 देशों की क्षेत्रीय व्यापक आर्थिक भागीदारी से बाहर हो गया था कोविड महामारी की शुरुआत के बाद मई 2020 में शुरू की गई आत्मनिर्भर भारत पहल को अंतरराष्ट्रीय स्तर पर एक संरक्षणवादी कदम में रूप में देखा गया। यही उपरोक्त कारणों से आजकल वैश्वीकरण व उसके परिणाम पर बहस हो रही है।

अंतरराष्ट्रीय संबंधों के अध्ययन के दृष्टिकोण

प्र. आधुनिकीकरण शोध प्रबंध (थीसिस) का कथन है कि संपन्नता स्थिर लोकतंत्र को जन्म देती है आप किस प्रकार भारत को विश्व के सबसे बड़े सफल लोकतंत्र को एक असाधारण उदाहरण के तौर पर देखते हैं?

उत्तर: लोकतंत्र का आशय लोगों के शासन से है। अमेरिकी राष्ट्रपति अब्राहम लिंकन ने अपने गैटिसवर्ग भाषण में लोकतंत्र को 'जनता का, जनता के द्वारा, जनता के लिए शासन' के रूप में परिभाषित किया है।

- विद्वान शूम्पीटर के अनुसार लोकतंत्र राजनीतिक निर्णयों तक पहुंचने के लिए वह संस्थागत व्यवस्था है जो नेताओं को निर्वाचन के माध्यम से विवादों का निर्णय करने योग्य बनाकर सामान्य कल्याण को साकार करती है।
- लोकतंत्र का व्यापक अर्थ सामाजिक एवं आर्थिक रूप में लोकतंत्र को लागू करना है, केवल राजनीतिक रूप से नहीं। अत: आर्थिक संगठनों और संरचना का लोकतांत्रिकरण आवश्यक है। निकोस पोलांजा की मान्यता है व्यावहारिक रूप में औद्योगिक लोकतंत्र ही सफल है अर्थात जहां संपन्नता है वहां लोकतंत्र सफल है।
- कैरोल पैरमेन के अनुसार लोकतंत्र का आशय केवल निर्वाचि सरकार ही नहीं अपितु सामाजिक एवं परिवारिक क्षेत्रों का भी लोकतांत्रिकरण है और यह तभी संभव है जब संपन्नता हों।
- वर्तमान समय में अमेरिका, ब्रिटेन, फ्रांस, जापान तथा ऑस्ट्रेलिया विकसित तथा संपन्न देश है और वहां लोकतंत्र सफल है स्थिर है अर्थात संपन्नता स्थिर लोकतंत्र को जन्म देती है।
- जॉन डिग्बी के अनुसार लोकतंत्र का मूल आधार मानवीय प्रकृति की क्षमताओं में विश्वास है तथा मानवीय बुद्धी में आस्था है और सहयोग के अनुभव की शक्ति है जिससे संपन्नता का जन्म होता है।
- उत्तर औपनिवेशिक देश में भारत के साथ बहुत देश स्वतंत्र हुए लेकिन भारत में ही एक स्थिर और विश्वसनीय लोकतंत्र देखने को मिलता है। इसके पीछे संविधान निर्माताओं की सोच तथा उत्तरोत्तर नेतृत्व द्वारा भारत के कल्याणकारी योजनाओं का लागू किया जाना मुख्य कारण है। भारत के आर्थिक विकास की स्थापना ने ही भारत को विश्व का सफल व स्थिर लोकतंत्र बनाने में मदद किया है।

अंतरराष्ट्रीय संबंधों में महत्वपूर्ण अवधारणाएं

प्र. "शीतयुद्ध उत्तरोत्तर काल में अंतर्राष्ट्रीय संबंधों के अध्ययन में मार्क्सवादी उपागम की प्रासंगिकता समाप्त हो गई है।" टिप्पणी कीजिए।

उत्तर: शीतयुद्ध उत्तरोत्तर काल में पूर्वी यूरोपीय साम्यवादी व्यवस्थाओं के विघटन व वर्ष 1990 में सोवियत संघ के विघटन के पश्चात फ्रांसिस फुकोयामा ने अपनी रचना The End of History and the Last Man में 1992 में कहा कि उदारवादी विचारधारा ने विचारधाराओं के संघर्ष को जीत लिया है।

- उदारवादी लोकतंत्र ही विश्व के समक्ष उपलब्ध सर्वोत्तम एवं एकमात्र विकल्प है। इनके अनुसार उदारवाद ने शीतयुद्ध के पश्चात साम्यवादी विचारधारा को भी हरा दिया है अत: अब इसकी प्रासंगिता समाप्त हो गई है।
- वर्ष 1990 के पश्चात उदारवादी उपागम का प्रयोग पूर्व साम्यवादी व्यवस्थाओं में भी किया गया तथा तीसरी दुनिया के अनेक भागों में अब उदारवादी आर्थिक प्रणाली को अपनाया या स्वीकार किया जा रहा है, जिसे संरचनात्मक समायोजन कार्यक्रम की संज्ञा दी जाती है वर्तमान भू-मंडलीकरण के युग में उदारवाद का निर्णायक व व्यापक प्रसार हुआ है।
- हालांकि यह भी ध्यातव्य है कि वर्तमान समय में भी अंतरराष्ट्रीय संबंधों के निर्धारण में अर्थव्यवस्था प्रमुख भूमिका अदा कर रहा है। आर्थिक गतिविधियां दी संबंधों के केंद्र में है, जिसका जिक्र मार्कवादी विचारक पराश्रितता के सिद्धांत में करते हैं।
- पराश्रितता सिद्धांतकारों के अनुसार विश्व, कोर एवं परिधि में विभाजित है। इनके अनुसार कोर (विकसित देश), परिध का (विकासशील) शोषण करते हैं।
- इसके अतिरिक्त शीतयुद्ध के बाद के काल के अंतरराष्ट्रीय संबंधों के अध्ययन के लिए अंतनिर्भर उदारवाद सिद्धांत का अध्ययन किया जाता है। जोसेफ नाई ने Soft Power The Means of Success in World Politics-2004 में लिखा की आज की दुनिया अंतनिर्भर हो गयी है प्रत्येक देश एक-दूसरे पर किसी न किसी रूप में निर्भर है। अत: वर्तमान अंतरराष्ट्रीय संबंधों के अध्ययन में मार्क्सवाद के पराश्रितता सिद्धांत के साथ जोसेफ नाई का अंतनिर्भर उदारवाद भी अध्ययन में सहायक है।

प्र. नवयथार्थवाद के उद्भव एवं इसके आधारभूत सिद्धांतों की विवेचना कीजिए।

उत्तर: नवयथार्थवाद या संरचनात्मक यथार्थवाद अंतरराष्ट्रीय संबंधों का एक सिद्धांत है जो कहता है कि शक्ति अंतरराष्ट्रीय संबंधों में सबसे महत्वपूर्ण कारक है। इसे सबसे पहले केनेय वाल्ट्ज ने 1979 की अपनी पुस्तक थ्योरी ऑफ इंटरनेशनल पॉलिटिक्स में उल्लेख किया था।

- उनके अनुसार अंतरराष्ट्रीय राजनीति की संरचना अराजकतापूर्ण है क्योंकि विश्व में ऐसी वैश्विक केन्द्रीय संस्था का अभाव है, जो राज्य की क्रियाओं को नियंत्रित कर सके एवं अंतरराष्ट्रीय राजनीति के नियमों को और व्यवहार से लागू किया जा सके।

सिविल सेवा मुख्य परीक्षा
(प्रथम प्रश्न पत्र)

राजनीतिक सिद्धांत अर्थ और दृष्टिकोण

खंड-क

प्र. राजनीतिक थियोरी का पुनरुत्थान
(सिविल सेवा मुख्य परीक्षा, 2019)

उत्तर: स्ट्रौस ने आधुनिक युग के संकट से उबरने हेतु क्लासिकीय राजनीतिक सिद्धांत के महत्त्व को फिर से दोहराया है। वह इस प्रस्थापना से सहमत नहीं हैं कि समस्त राजनीतिक सिद्धांत एक प्रदत्त सामाजिक-आर्थिक हित को प्रतिबिम्बित करता प्रकृति में वैचारिक है, क्योंकि अधिकांश राजनीतिक चिंतक सामाजिक विद्यमानता में सही व्यवस्था के सिद्धांत को जान लेने की संभाव्यता द्वारा ही अभिप्रेरित होते हैं। एक राजनीतिक दार्शनिक को मुख्य तौर पर सत्य में रुचि रखनी चाहिए। यह विभाजित मान्यताओं का अध्ययन संसक्ति और संगति को ध्यान में रखते हुए किया जाता है।

राजनीतिक सिद्धांत में उत्कृष्ट साहित्य के लेखक अधिक श्रेष्ठ हैं, क्योंकि वे प्रतिभा-सम्पन्न व्यक्ति होते थे और उन्हें उनकी कृतियों के हिसाब से ही आँका जाना था। स्ट्रौस 'नव' राजनीतिक विज्ञान के तरीकों और प्रयोजनों पर सूक्ष्म दृष्टि डालते हैं और निष्कर्ष निकालते हैं कि क्लासिकीय राजनीतिक सिद्धांत, खासकर अरस्तू के, से तुलना किए जाने पर यह दोषपूर्ण है। अरस्तू के अनुसार, किसी भी राजनीतिक वैज्ञानिक को निष्पक्ष रहना पड़ता है, क्योंकि उसके पास मानवीय साध नों की एक अधिक व्यापक और स्पष्ट समझ होती है।

राजनीतिक विज्ञान और राजनीतिक दर्शन तद्रूप हैं, क्योंकि सैद्धांतिक और व्यावहारिक पहलुओं वाला विज्ञान दर्शनशास्त्र के तद्रूप है। अरस्तू का राजनीतिक विज्ञान राजनीतिक वस्तुओं का भी मूल्यांकन करता है, व्यावहारिक मामलों में दूरदर्शिता की स्वायत्तता की रक्षा करता है और राजनीतिक कार्रवाई को अनिवार्यत: नीतिशास्त्रीय के रूप में देखता है। इन आधार वाक्यों को व्यवहारवाद अस्वीकार करता है, क्योंकि वह राजनीतिक दर्शन को राजनीतिक विज्ञान से अलग करता है और उसके स्थान पर सैद्धांतिक एवं व्यावहारिक विज्ञानों के बीच भेद को रखता है। वह व्यवहारमूलक विज्ञानों से व्युत्पन्न हुआ तो मानता है परन्तु ठीक उसी भाँति नहीं होते जैसे कि क्लासिकीय परम्परा मानती है। आशावाद की भाँति व्यवहारवाद भी अनर्थकारी है, क्योंकि वह परम सिद्धांतों के संबंध में ज्ञान से इनकार करता है।

उनका दिवालियापन प्रत्यक्ष है, क्योंकि वे असहाय दिखाई पड़ते हैं, जो सर्वसत्तावाद के उदय के चलते सही या गलत अथवा उचित या अनुचित में भी भेद नहीं कर पाते हैं।

स्ट्रौस इतिहासवाद संबंधी ईस्टन के दोषारोपण का प्रत्युत्तर देते हुए कहते हैं कि यह नया विज्ञान ही राजनीतिक सिद्धांत में पतन हेतु उत्तरदायी है, क्योंकि उसने नियामक मुद्दों संबंधी अपनी समग्र उपेक्षा की वजह से पश्चिमी देशों के आम राजनीतिक संकट की ओर इशारा किया और उसे दुष्प्रेरित किया।

वोगलिन राजनीतिक विज्ञान और राजनीतिक सिद्धांत को अविभाज्य और इस प्रकार का बताया कि एक दूसरे के बगैर संभव नहीं है। राजनीतिक विज्ञान कोई विचारधारा, कल्पनालोक अथवा वैज्ञानिक कार्यप्रण ाली नहीं बल्कि एक प्रयोगात्मक विज्ञान है जो व्यक्ति और समाज दोनों में सही व्यवस्था संबंधी है।

इसको व्यवस्था संबंधी समस्या का आलोचनात्मक और आनुभाविक रूप से सूक्ष्म परीक्षण करना पड़ता है।

सिद्धांत समाज में मानव अस्तित्व विषयक कोई मत प्रकटन मात्र नहीं है, अपितु यह अनुभवों के एक निर्णायक वर्ग की विषयवस्तु की व्याख्या द्वारा अस्तित्व के अर्थ को सूत्रबद्ध करने का एक प्रयास है। उसका तर्क यादृच्छिक नहीं है बल्कि वह उन अनुभवों के पूर्णयोग से वैधता व्युत्पन्न करता है, उसे आनुभाविक नियंत्रण हेतु स्थायी रूप से संदर्भ लेना चाहिए।

प्र. राज्य की बहुवादी थियोरी।
(सिविल सेवा मुख्य परीक्षा, 2019)

उत्तर: बहुलवादी विचारधारा (Pluralism Ideology) के अनुसार राजसत्ता संप्रभु और निरंकुश नहीं है। समाज में विद्यमान अन्य अनेक समुदायों का अस्तित्व राजसत्ता को सीमित कर देता है। व्यक्ति अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए केवल राज्य की सदस्यता स्वीकार नहीं करता और राज्य के साथ-साथ दूसरे अनेक समुदायों और संघों की सदस्यता भी स्वीकार करता है। ऐसी स्थिति में एकमात्र राज्य की संपूर्ण सत्ता प्रदान नहीं की जा सकती है।

विद्वान हेसियो (Hasio) ने इस संबंध में लिखा है कि "बहुलवादी राज्य एक ऐसा राज्य है, जिसमें सत्ता का केवल एक ही श्रोत नहीं है, यह विभिन्न क्षेत्रों में विभाजनीय है और इसे विभाजित किया जाना चाहिए।"

19वीं शताब्दी के शुरू में व्यक्तिवाद (Individualism) का जो दौर आया था उसकी तीव्र प्रतिक्रिया के रूप में केंद्रीकृत और सर्वसत्तात्मक प्रभुत्व संपन्न राज्य की मांग की जाने लगी थी।

प्रभुसत्ता के बहुलवादी सिद्धांत (pluralism theory) का उदय इन्हीं प्रवृत्तियों के विरोध में हुआ क्योंकि उसने राज्य के एकतत्व (Monastic) स्वरूप और उसकी अखंड संप्रभुता का खंडन करके उसे समाज की अन्य संस्थाओं के समकक्ष रखा और सामाजिक उद्देश्यों की पूर्ति के लिए राज्य के साथ-साथ अन्य सामाजिक संस्थाओं की भूमि पर प्रकाश डाला।

बहुलवादियों का मानना है कि राज्य कितना भी शक्तिशाली क्यों न हो जाए, वह अनेक संस्थाओं में से एक संस्था है। बहुलवादी विचारक (Pluralism Thinker) राज्य की असीमित प्रभुसत्ता के सिद्धांत पर कठोर प्रहार करते हैं। राज्य संप्रभुता का एकतरफा प्रयोग नहीं कर सकता। बहुलवादी राज्य के भीतर ही कई शक्तिशाली संस्थाओं का अस्तित्व स्वीकार करते हैं। उन्होंने संप्रभुता के एकलवाद (Monastic) की कटु आलोचना की है।

बहुलवादियों ने तर्क दिया की कोई भी संस्था व्यक्ति से अनन्य निष्ठा की मांग नहीं कर सकती, क्योंकि समाज की अनेक संस्थाएं मनुष्य के हितों की देखरेख करती है। उसके सामने अनेक बार यह निर्णय करने का अवसर आता है कि वह राज्य की औपचारिक सर्वोच्चता का सम्मान करें, या फिर किसी दूसरी संस्था या संगठन के आह्वान पर इसकी उपेक्षा कर दें।

अत: बहुलवादियों का तर्क था कि राज्य चाहे कितनी ही गरिमामय और शक्तिशाली संस्था क्यों न हो, वस्तुत: वह समाज की अनेक संस्थाओं में से एक है।

बहुलवादियों की मान्यता है कि मनुष्य की सामाजिक प्रकृति अनेक समुदायों के माध्यम से व्यक्त होती है, केवल राज्य के माध्य से नहीं। समाज में धार्मिक, आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, व्यवसायिक और राजनीतिक समुदाय नैसर्गिक रूप से उत्पन्न होते हैं जिनके द्वारा मनुष्य के हितों की पूर्ति होती है।

राज्य इन समुदायों का जन्मदाता नहीं है। राज्य की इन पर किसी प्रकार की नैतिक श्रेष्ठता भी नहीं है क्योंकि मूलत: राज्य भी समाज के विभिन्न समुदायों की भांति एक समुदाय मात्र है और जिसके कार्य सीमित एवं सुनिश्चित है। राज्य निरंकुश अथवा सर्वशक्तिमान नहीं है। बहुलवादी संप्रभुता के परंपरागत सिद्धांत का खंडन करते हैं परंतु वे राज्य को समाज की एक आवश्यक संस्था भी मानते हैं।

बहुलवादी सत्ता के केंद्रीकरण (power of centralized) के विरुद्ध हैं और यह तर्क देते हैं कि राज्य में कार्य क्षमता का नितांत अभाव रहता है। वे यह मानते हैं कि यदि वर्तमान विश्व के जटिल राजनीतिक और आर्थिक संबंधों को ध्यान में रखा जाए तो राज्य और समाज को एक मान लेना भारी भूल होगी।

वे यह नहीं मानते कि मनुष्य की सामाजिक प्रकृति एक ही संगठन में पूरी तरह व्यक्त हो सकती है इसे राज्य कहते हैं। अत: वे राज्य की अखंड-असीम प्रभुसत्ता को अस्वीकार करके समाज के अंतर्गत अन्य संस्थाओं को और बड़ा हिस्सा देने की मांग करते हैं।

प्र. उत्तर-व्यवहारवादी उपागम।

(सिविल सेवा मुख्य परीक्षा, 2016)

उत्तर: बीसवीं शताब्दी के सातवें दशक के अंत में डेविड ईस्टन ने व्यवहारवाद की तत्कालीन प्रवृत्तियों पर प्रबल प्रहार किया हालांकि व्यवहारवाद के विकास में स्वयं ईस्टन की महत्वपूर्ण भूमिका रही थी। सितंबर 1969 में न्यूयॉर्क में 'अमेरिकन पॉलिटिकल साइंस एसोसिएशन' के पैंसठवें अधिवेशन में अपने अध्यक्षीय भाषण के अन्तर्गत ईस्टन ने तत्कालीन राजनीतिक अनुसंधान की स्थिति पर गहरा असंतोष व्यक्त किया जिसमें राजनीति के अध्ययन को कठोर वैज्ञानिक अनुशासन में ढ़ालने की कोशिश की जा रही थी।

उसे नई दिशा देने के लिए ईस्टन ने 'उत्तर-व्यवहारवादी क्रांति' का शंखनाद किया। उत्तर-व्यवहारवाद ने व्यवहारवाद की तीव्र आलोचना अवश्य की, परंतु उसने परंपरावाद को पुन: स्थापित करने का समर्थन नहीं किया।

उसने व्यहारवादी युग की उपलब्धियों को स्वीकार करते हुए राजनीति विज्ञान के नए क्षितिज की ओर संकेत किया। अत: न तो यह प्रतिक्रिया का सूचक था, न प्रतिक्रांति का; इसने केवल सुधार की मांग की। इसने किसी विशेष विचारधारा को भी नहीं अपनाया। इसकी दो मुख्य मांगे थीं- प्रासंगिकता और कार्रवाई। ईस्टन के अनुसार उत्तर-व्यवहारवाद की प्रमुख मान्यताएं निम्न हैं-

- उत्तर-व्यवहारवाद के अनुसार राजनीतिक अनुसंधान में तकनीक का उतना महत्व नहीं है जितना कि सारतत्व का है। इसमें अनुप्रयुक्त ज्ञान या व्यवहार पर विशेष ध्यान दिया जाता है।
- इसमें सामाजिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए ज्ञान की प्र. ासंगिकता पर विचार किया जाता है और समस्या-समाधान के उद्देश्य से कार्रवाई की मांग की जाती है।
- यह सामाजिक समस्याओं के प्रति अत्यंत सजग है और उनके समाधान के लिए सामाजिक परिवर्तन की मांग करता है।
- इसमें समष्टि-विश्लेषण अर्थात बड़ी-बड़ी इकाईयों की स्थिति और भूमिका के विश्लेषण पर ध्यान दिया जाता है। इसमें निर्णय के कथ्य या वस्तु-तत्व का विश्लेषण किया जाता है।
- उत्तर-व्यवहारवाद राजनीति-वैज्ञानिकों से यह मांग करता है कि बुद्धिजीवियों के नाते उन्हें समाज में बड़े-बड़े काम करने हैं। मानव मूल्यों की रक्षा करना उनका विशेष दायित्व है। इस प्रकार उत्तर-व्यवहारवाद मूल्यों से भी गहरा सरोकार रखता है।
- समग्रत: हम कह सकते हैं कि उत्तर-व्यवहारवाद ने व्यवहारवाद की उपलब्धियों को समेकित करके उसके विकास की नई दिशा का संकेत दिया ताकि वह सामाजिक पुनर्निर्माण में सहायक हो सके।

प्र. ''..... राजनीतिक थियोरी एक पलायन तंत्र नहीं है, अपितु एक कठिन आह्वान है।'' (जॉन प्लैमनेट्ज)

(सिविल सेवा मुख्य परीक्षा, 2014)

उत्तर: राजनीतिक सिद्धांत पर कभी-कभी यह आरोप लगाया जाता है कि सब तरह के काल्पनिक चिंतन की तरह राजनीतिक सिद्धांत भी यथार्थ की अनदेखी करता है। अत: उसे व्यवहार में उतारने की कोई गुंजाइश नहीं है। यह एक प्रकार से पलायन तंत्र है। इसी परिप्रेक्ष्य में प्रसिद्ध राजनीतिक चिंतक जॉन प्लैमनेट्ज ने प्रस्तुत बातें कही हैं।

राज्य के सिद्धांतः उदार, नवउदार, मार्क्सवादी, बहुवचनवादी, औपनिवेशिक और नारीवादी

प्र. राज्य का उत्तर उपनिवेशवादी सिद्धांत

(सिविल सेवा मुख्य परीक्षा, 2020)

प्रश्न की मांग: राज्य के उत्तर उपनिवेशवादी सिद्धांत को स्पष्ट करना है, साथ ही विचारकों के आलोचनात्मक पक्ष को भी बताना है।

उत्तर: उत्तर उपनिवेशवादी समाज में राज्य और सामाजिक वर्ग के मध्य का संबंध अत्यधिक जटिल माना गया है। मेट्रोपोलिटन बुर्जुआ वर्ग ने राज्य और सरकार के लिए उन संस्थाओं का निर्माण किया, जिनसे उनका प्रभाव बना रहे। क्योंकि उत्तर उपनिवेशवादी समाजों में तीन प्रकार के वर्गों की विद्यमानता है- पहला, मेट्रोपोलिटन बुर्जुआ, दूसरा, घरेलू पूंजीपति या बुर्जुआ और तीसरा, सामंती वर्ग।

राज्य का उत्तर उपनिवेशवाद: उत्तर उपनिवेशवदी समाजों में राज्य किसी एक वर्गमात्र के हाथ का यंत्र नहीं होता है, अपितु यह सापेक्षित रूप में स्वायत्त होती है। इसके द्वारा समाज के तीनों वर्गों के प्रतिस्पर्धी हितों के मध्य सामंजस्य बनाया जाता है। इनके द्वारा एक ऐसी सामाजिक व्यवस्था का निर्माण होता है, जिनमें तीनों वर्गों के हित सुरक्षित रहें। इसलिए उत्तर उपनिवेशवादी राज्यों में निजी संपत्ति और उत्पादन के पूंजीवादी तरीकों को बनाये रखा जाता है।

इन समाजों में सैन्य व्यवस्था और नौकरशाही का गुटतंत्र कायम है और समाज द्वारा निर्मित लाभों पर इन्हीं का नियंत्रण है। आर्थिक विकास के नाम पर नौकरशाही के द्वारा समूची आर्थिक गतिविधियों पर नियंत्रण स्थापित कर लिया गया है। इसलिए हम्जा अल्वी ने यह स्वीकार किया कि उत्तर उपनिवेशवादी समाजों में मार्क्स के परंपरागत विचारों को प्रयुक्त करना व्यावहारिक नहीं है।

इनके अनुसार उत्तर उपनिवेशवादी राज्यों पर अभी भी अंतरराष्ट्रीय पूंजीवादी व्यवस्था का नियंत्रण बना हुआ है। ये राज्य इसी पूंजीवादी व्यवस्था के अधीन अभी भी शोषित हैं, परंतु इन समाजों में राज्य अत्यधिक विकसित हैं, क्योंकि इसका निर्माण साम्राज्यवादी बुर्जुआ के द्वारा किया गया है। यहां समाज अभी भी असक्त और कमजोर है। जिन उत्तर उपनिवेशवादी राज्यों में लोकतंत्र की स्थापना हुई, वहां नौकरशाही और सैन्यव्यवस्था पर राजनीतिक दलों का अत्यधिक प्रभाव होता है।

राजनीतिक दल लोगों के मध्य उत्पन्न असंतोष और विद्रोह की भावना को समाप्त कर देते हैं और यह दावा करते हैं कि सभी की समस्याओं का समाधान होगा। इन उत्तर उपनिवेशवादी राज्यों में राजनेताओं और नौकरशाही का संबंध एक दूसरे के पूरक एवं विरोधाभाषी भी हैं, क्योंकि दोनों मिलकर व्यवस्था का संचालन करते हैं, लेकिन दोनों के मध्य मतभेद भी कायम होते हैं।

पाकिस्तान जैसे उत्तर उपनिवेशवादी राज्यों में नौकरशाही और सेना अत्यधिक शक्तिशाली हुई, जिसने समूची सत्ता पर नियंत्रण कर लिया।

अलोचना: महान विचारक गुन्नार मिर्डल उत्तर उपनिवेशवादी राज्यों की आलोचना करते हैं। उनका कहना है कि राज्य जनमत के दबाव के आगे झुक जाता है। साथ राज्य लोगों पर नियंत्रण और अनुशासन बनाये रखने में असफल रहता है।

निष्कर्ष

इस प्रकार राज्य के उत्तर उपनिवेशवाद सिद्धांत में उपनिवेशवाद और साम्राज्यवाद से उत्पन्न हुए राजनीतिक, प्रशासनिक, सांस्कृतिक और सामाजिक प्रभावों को समझने का प्रयास किया गया है। इसमें राज्य द्वारा संचालित नियंत्रण प्रक्रिया से स्थानीय लोगों पर होने वाले प्रभावों का भी आकलन करना शामिल है।

प्र. उदारतावादी नारी-अधिकारवाद और उग्रवादी नारी-अधिकारवाद के बीच विभेदन कीजिए।

(सिविल सेवा मुख्य परीक्षा, 2019)

उत्तर: नारीवाद की शुरुआत स्त्रियों द्वारा अपने लिए पुरुषों के समान ही जगह की मांग से हुई मानी जा सकती है। पुरुषों के लिए विंडिकेशन ऑफ राइट्स ऑफ मैन के जवाब में मेरी वुल्सटनक्राफ्ट ने विंडिकेशन ऑफ राइट्स ऑफ वीमेन लिखी। यहीं से पश्चिम जगत में नारीवाद की शुरुआत हुई।

उदारवादी नारी अधिकारवाद एक व्यक्तिवादी किस्म का नारीवाद हैं, जिसमें औरतें समझती है कि वह अपनी सोच और करतब से समानता पा सकती हैं। उदारवादी नारीवादियों का मानना हैं कि सामाजिक संस्थाओं में औरतों की आवाज और उनकी पहचान का सही मायने में प्रतिनिधित्व नहीं हो पता। उनका कहना है कि, इसकी वजह औरतों के प्रति भेदभावपूर्ण नियम और कानून है। इसी कारण औरते विकास से वंचित रहती है।

नारीवाद की उदारवादी धरा की शुरुआत मेरी वुल्सटनक्राफ्ट ने विंडिकेशन ऑफ राइट्स ऑफ वीमेन (1792) एवं जे.एस. मिल की रचना 'दि सब्जेक्शन ऑफ वूमैन' (1869) से मानी जाती है। बाद में बेटी फ्राइडेन, जेनेट रेडक्लिफ एवं ओकिन जैसी विचारकों ने इस धारा को काफी लोकप्रिय बनाया। उदारवादी नारीवाद का मुख्य विचार यह है कि सभी मनुष्य ईश्वर द्वारा समान रूप से बनाए गए हैं एवं सबके अधि कार समान हैं। इनके अनुसार महिलाओं के शोषण का मुख्य कारण वे सामाजिक तौर-तरीके हैं जो पुरुषों को हमेशा सबल स्थिति में रखते हैं।

उदारवादी नारीवादियों के अनुसार महिलाओं के अंदर भी पुरुषों के समान मानसिक क्षमता विद्यमान होती हैं और इसीलिए सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक हर क्षेत्र में उन्हें भी समान अवसर दिया जाना चाहिए। उदारवादी नारीवादियों के अनुसार सामाजिक हितों से संबंध रखने वाले मुद्दों के ऊपर व्यक्तिगत अधिकारों को वरीयता दी जानी चाहिए। संक्षेप में, पर दुर्भाग्य से उदारवादी नारीवाद पितृसत्ता के खिलाफ इस संघर्ष के केवल वैधानिक पहलुओं पर ही केन्द्रित होकर रह गया है। इसीलिए आलोचक इस पर यह आक्षेप लगाते हैं कि अपने वैचारिक दृष्टिकोण से भी ये असफल हो चुका है। साथ ही राजनीति एवं रोजगार की दुनिया में महिलाएं वास्तविक समानता को प्राप्त करने में असफल ही रही हैं। सार्वजनिक रूप से चंद सुविधाओं को प्राप्त कर महिलाओं ने शक्ति एवं सत्ता के क्षेत्र में स्थापित पुरुषों के आधिपत्य को एक स्वीकृति प्रदान कर दी है। अत: अपने इस संघर्ष के बावजूद महिलाएँ ज्यादा लाभ प्राप्त नहीं कर पायी हैं तथा अभी भी पूर्ण कानूनी समानता का लक्ष्य कोसों दूर हैं।

जबकि उग्रवादी नारी अधिकारवाद की मुख्य समर्थक वूवियर, केट मिलेट, फायरस्टोन जैसी नारीवादी हैं। इसमें महिलाओं के उत्पीड़न के मूल कारणों पर चोट की गई है। यह दृष्टिकोण, 'चेतना की जागृति' के रूप में प्रसिद्ध है। वस्तुत: इसमें यह विचार निहित है कि महिलाएँ अपनी चुप्पी के दिनों से निकलकर अपनी साझी समस्याओं को उद्घाटित करें। पहले महिलाएं इसे केवल अपनी निजी समस्या मानती थीं। लेकिन आगे चलकर कुछ महिलाओं ने इसके समाधान के रूप में एक प्रकार की चेतना को जागृत करने का काम शुरू किया। वास्तव में, यह स्व-चेनता पर आधरित एक राजनीतिक रणनीति थी।

नारी अधिकारवाद ने सदियों से होने वाले स्त्रियों के प्रति अन्याय और अत्याचार के विरुद्ध आंदोलन छेड़ा है, लेकिन स्त्री-पुरुष संघर्ष से जीवन की अन्य जटिलताएं उत्पन्न हो जाती हैं। नारी अधिकारवाद का यह दावा उचित प्रतीत होता है कि स्त्रियों को निर्बल न समझा जाए। महिलाओं को न तो दया का पात्र माना जाए न ही दासता का विषय बनाया जाए। वरन् उन्हें जीवन के हर क्षेत्र में यथोचित सम्मान प्रदान किया जाए। वस्तुत: पुरुष और स्त्री के व्यक्तित्व का विकास दोनों पर निर्भर करता है। नारी का अपमान मानवता का सबसे बड़ा अपमान है। उसकी उपेक्षा मनुष्य के अस्तित्व को जर्जर, नीरस और व्यर्थ कर देती है।

प्र. राजनीतिक थियोरी का ह्रास?
(सिविल सेवा मुख्य परीक्षा, 2018)

उत्तर: मनुष्य दो मामलों में अद्वितीय है- उसके पास विवेक होता है और अपनी गतिविधियों में उसे व्यक्त की योग्यता होती है। उसके पास भाषा का प्रयोग और एक-दूसरे से संवाद करने की क्षमता भी होती है। अन्य प्राणियों से इतर मनुष्य अपने अंतरतम भावनाओं और आकांक्षाओं को व्यक्त कर सकता है, वह जिन्हें अच्छा और वांछनीय मानता है अपने उन विचारों को साझा कर सकता है और उन पर चर्चा कर सकता है। राजनीतिक सिद्धांत की जड़ें मानव अस्मिता के इन जुड़वा पहलुओं में होती हैं। यह कुछ खास बुनियादी प्रश्नों का विश्लेषण करता है जैसे समाज को कैसे संगठित होना चाहिए? हमें सरकार की जरूरत क्यों है? सरकार का सर्वश्रेष्ठ रूप कौन सा है? क्या कानून हमारी आजादी को सीमित करना है? राजसत्ता की अपने नागरिकों के प्रति क्या देनदारी होती है? नागरिक के रूप में एक-दूसरे के प्रति क्या देनदारी होती है?

राजनीतिक सिद्धांत इस तरह के प्रश्नों की पड़ताल करता है और राजनीतिक जीवन को अनुप्राणित करने वाले स्वतंत्रता समानता और न्याय जैसे मूल्यों के बारे में सुव्यवस्थित रूप से विचार करता है। यह इनके और संबद्ध अवधारणा के अर्थ और महत्व की व्याख्या करता है। यह अतीत और वर्तमान के कुछ प्रमुख राजनीतिक चिंतकों को केंद्र में रखकर इन अवधारणाओं की मौजूदा परिभाषाओं को स्पष्ट करता है यह विद्यालय, दुकान, बस, ट्रेन या सरकारी कार्यालय जैसी दैनिक जीवन से जुड़ी संस्थाओं में स्वतंत्रता या समानता के विस्तार की वास्तविकता की परख भी करता है और आगे जाकर यह देखता है कि वर्तमान परिभाषा कितनी उपयुक्त है और कैसे वर्तमान संस्थाओं (सरकार नौकरशाही) और नीतियों के अनुपालन को अधिक लोकतांत्रिक बनाने के लिए उनका परिमार्जन किया जाए। राजनीतिक सिद्धांत का उद्देश्य नागरिकों को राजनीतिक प्रश्नों के बारे में तर्कसंगत ढंग से सोचने और सामयिक राजनीतिक घटनाओं को सही तरीके से आंकने का प्रशिक्षण देना है। परंतु 21वीं सदी के इस दौर में विभिन्न दबाव समूहों, उनकी विचारधाराओं इत्यादि का प्रभाव लगातार राजनीतिक सिद्धांतों को क्षति पंहुचा रहा है और नवीनतम सिद्धांतों में इनका ह्रास परिलक्षित हो रहा है।

प्र. राज्य की नव-उदारवादी थियोरी का समालोचनात्मक परीक्षण कीजिए। (सिविल सेवा मुख्य परीक्षा, 2018)

उत्तर: नव-उदारवाद चार आधारभूत पक्षों पर आधारित है, जो निम्नांकित हैं-

(i) बाजार चालित अर्थव्यवस्था: नव-उदारवाद, बाजार को इसकी प्रमुखता की स्थिति में बनाए रखने में विश्वास करता है, जो कि केनेसियन कल्याणकारी अर्थशास्त्र काल के दौरान समाप्त हो गया था। यह 'अहस्तक्षेपवादी अर्थव्यवस्था के नियम तथा समान परिणामों के लिए बाजार कला की सर्वोच्चता व पवित्रता में विश्वास करता है। दूसरे शब्दों में, बाजार की नैतिकता' में विश्वास करता है।

(ii) वैयक्तिक स्वतंत्रता पर बल: नव उदारवाद का स्वरूप ''आर्थिक कार्यों से राज्य को अलग करके वैयक्तिक स्वतंत्रता में अधि काधिक वृद्धि पर केन्द्रित हैं।

(iii) मुद्रावाद: युनाइटिड किन्गडम के संदर्भ में नव उदारवाद इस बात पर जोर देता रहा कि बढ़ती मंहगाई महत्वपूर्ण समस्या है, न कि बेरोजगारी, और इसका समाधान मुद्रा संचालन के समुचित नियमन से होगा।

(iv) कल्याणकारी राज्य का बहिष्कार: नव-उदारवाद कल्याणकारी राज्य की शक्तियां कम करने में विश्वास रखता है, जिसे मुक्त बाजार की क्षमता को कम करने तथा निर्भरता की संस्कृति को बढ़ावा देने के रूप में समझा जाता है।

- **सामाजिक न्याय:** राज्य का नव-उदार विचार, जो सामाजिक न्याय को ग्रहण करता है, स्वभावत: अनुचित होता है। ऐसा इसलिए, क्योंकि कुछ व्यक्तियों को वह लाभ मिल जाते हैं, जिनके वे हकदार नहीं होते, जबकि अन्य उस लाभ से वंचित हो जाते हैं, जो उन्हें प्रदान किए जाने चाहिए।
- **उपभोक्ता-संवेदी दृष्टिकोण:** राज्य शक्ति को अनुचित रूप से एकाधिकार दिया जाता है, क्योंकि हित समूहों को विशिष्ट उपचार प्रदान किया जाता है। तब बाजार की प्रकृतिक कार्यप्रणाली पर

सिविल सेवा मुख्य परीक्षा
(द्वितीय प्रश्न पत्र)

तुलनात्मक राजनीतिः प्रकृति और प्रमुख दृष्टिकोण

खंड-क

प्र. तुलनात्मक राजनीति की विषयवस्तु की विवेचना कीजिए। तुलनात्मक राजनीतिक विश्लेषण की सीमाओं को रेखांकित कीजिए। (सिविल सेवा मुख्य परीक्षा, 2020)

प्रश्न की मांग: तुलनात्मक राजनीति की विषयवस्तु
- तुलनात्मक राजनीति के विश्लेषण की सीमा
- निष्कर्ष

उत्तर: तुलनात्मक राजनीति का महत्त्व इसकी वर्तमान स्थिति पर ही निर्भर है। वस्तुतः आज की जटिल समाजिक-व्यवस्थाओं के सन्दर्भ में राजनीति को केवल औपचारिक संस्थाओं और शासन के अंगों की जानकारी के आधार पर नहीं समझा जा सकता। आज राजनीति सामाजिक प्रक्रिया का एक आयाम है।

तुलनात्मक राजनीति की विषयवस्तु

तुलनात्मक राजनीति केवल आधुनिक युग की देन नहीं है, बल्कि इसका गौरवपूर्ण अतीत है। तुलनात्मक राजनीति के विकास की गाथा अरस्तु से प्रारम्भ होती है। अरस्तु ने ही सर्वप्रथम 158 देशों के संविधानों का तुलनात्मक अध्ययन करके राज्य सम्बन्धी सिद्धान्तों की नींव रखी।

अरस्तु के बाद अनेक विचारक सदैव यही बात सोचते रहे हैं कि कौन सी शासन-व्यवस्था किस समाज के लिए उपयुक्त हो सकती है। उनकी इसी बात में तुलनात्मक शब्द का समावेश हो जाता है। अरस्तु के बाद मैकियावेली, माण्टेस्क्यू, मार्क्स आदि विद्वानों ने तुलनात्मक विश्लेषण का विकास करके तुलनात्मक राजनीति का विकास किया है। इस तरह लम्बे विकास के दौर से गुजरती हुई तुलनात्मक राजनीति अपनी वर्तमान अवस्था तक पहुँच पाई है। अनेक उतार-चढ़ावों से परिपूर्ण तुलनात्मक राजनीति आज एक स्वतंत्र विषय के रूप में विराजमान है।

तुलनात्मक राजनीति के विश्लेषण की सीमाएं

तुलनात्मक राजनीति की विषयवस्तु इसकी वर्तमान स्थिति पर ही निर्भर है। वस्तुतः आज की जटिल समाजिक-व्यवस्थाओं के सन्दर्भ में राजनीति को केवल औपचारिक संस्थाओं और शासन के अंगों की जानकारी के आधार पर नहीं समझा जा सकता। आज राजनीति सामाजिक प्रक्रिया का एक आयाम है। राजनीतिक प्रणाली सामाजिक प्रणाली का ही एक हिस्सा है।

आज विभिन्न शासन-प्रणालियों या शासन के अंगों में प्रकट रूप से अनेक समानताएं व असमानताएं हैं, इसलिए तुलनात्मक राजनीति की प्रकृति बहुत जटिल हो गई है। अपने लम्बे इतिहास से परिपूर्ण तुलनात्मक राजनीति का वर्तमान स्वरूप अनिश्चित, अस्पष्ट और असंतोषजनक है। आज तुलनात्मक राजनीति एक संक्रमणकाल से गुजर रही है। प्रतिदिन राजनीतिक व्यवस्थाओं की कार्यप्रणाली और राजनीतिक व्यवहार में नए नए परिवर्तन हो रहे हैं। अफगानिस्तान में तालिबान के शासन का अन्त, ईराक में सद्दाम हुसैन की अधिनायकता का अन्त, शीत युद्ध का अन्त, राजनीतिक व्यवस्थाओं की कार्यप्रणाली पर आतंकवाद का प्रभाव आदि तथ्यों के संदर्भ में तुलनात्मक अध्ययन में स्थायित्व का गुण आना असम्भव है।

आज तक राजनीति शास्त्र के विद्वान इस बात को स्पष्ट नहीं कर सके हैं कि तृतीय विश्व के विकासशील राष्ट्रों की राजनीति का अध्ययन कैसे करें। राजनीतिक अस्थिरता, आर्थिक उतार-चढ़ावों के कारण इन राजनीतिक व्यवस्थाओं का अध्ययन व विश्लेषण करने के सारे उपागम असफल हो रहे हैं। अनेक विकासशील देशों में सैनिक क्रान्तियां हुई हैं। अफ्रीका में तख्ता पलट की अनेकों घटनाएं आज राजनीति शास्त्रियों के अध्ययन का केन्द्र बन रही हैं। अब तुलनात्मक अध्ययन द्वारा राजनीतिक व्यवस्थाओं की अस्थिरता के कारणों का पता लगाना अनिवार्य हो गया है।

आज तुलनात्मक राजनीति के सामने यह प्रश्न है कि तुलनात्मक राजनीति की प्रकृति क्या है? तुलनात्मक अध्ययन क्या है? तुलनात्मक राजनीति की उपयोगिता क्या है? इन प्रश्नों के समुचित उत्तर प्राप्त करने के लिए राजनीति-शास्त्री निरन्तर प्रयासरत हैं। आज राजनीतिशास्त्रियों के सामने राजनीतिक व्यवस्थाओं के वर्गीकरण का प्रश्न भी है। वे इस बात का निर्णन करने के लिए प्रयास कर रहे हैं कि कौन-सी व्यवस्था किस उद्देश्य के लाभदायक हो सकती है। आज तुलनात्मक राजनीति के पास मापन इकाई का भी अभाव है। इसके लिए संस्थापक-प्रकार्यात्मक विधि विश्लेषण को उपयोगी बनाने के प्रयास किए जा रहे हैं।

इस प्रकार आज अनेक राजनीतिक विद्वान उपरोक्त प्रश्नों के उत्तर पाने के लिए प्रयासरत हैं, इसलिए तुलनात्मक राजनीति का भविष्य उज्ज्वल दिखाई देता है। आने वाले समय में तुलनात्मक अध्ययन राजनीतिक व्यवहार को समझने में एक सम्पूर्ण राजनीतिक विश्लेषण का निर्माण करने में सफलता प्राप्त करेगा।

प्र. तुलनात्मक राजनीति के क्षेत्र में राजनीतिक-समाजशास्त्रीय उपागम को स्पष्ट कीजिए एवं उसकी सीमाओं की विवेचना कीजिए। (सिविल सेवा मुख्य परीक्षा, 2017)

उत्तर: राजनीति-समाजविज्ञान या राजनीतिक समाजशास्त्र ऐसा विषय है जो राजनीति विज्ञान एवं समाज विज्ञान की सीमाओं को स्पर्श करता है। इसकी विषय वस्तु इन दोनों के विचार क्षेत्र में आती है। सामाजिक प्रणाली एक विस्तृत व्यवस्था है, राजनीतिक प्रणाली की स्थिति सामाजिक प्रणाली के भीतर एक उपप्रणाली की है। यह एक ऐसा विषय है जहां राजनीति विज्ञान व समाजविज्ञान एक दूसरे के निकट आ जाते हैं, दोनों एक दूसरे की उपलब्धियों का लाभ उठाते हैं। संक्षेप में यह समाजविज्ञान व राजनीति विज्ञान के अन्तर्विषयक अध्ययन का क्षेत्र है।

इसी परिपेक्ष्य में आर. वेदिम्स और एस.एम. लिप्सेट- ''राजनीति विज्ञान के अन्तर्गत यह पता लगाते हैं कि राज्य समाज को कैसे प्रभावित करता है? दूसरी ओर राजनीति-समाजविज्ञान के अन्तर्गत यह पता लगाते हैं कि समाज राज्य को कैसे प्रभावित करता है''? समाजविज्ञान अन्य तत्वों के साथ-साथ राजनीतिक शक्ति के प्रभाव को परखने की कोशिश करते हैं ताकि संपूर्ण सामाजिक जीवन की व्याख्या की जा सके।

तुलनात्मक राजनीतिक विश्लेषण के क्षेत्र में राजनीतिक समाजविज्ञान या राजनीतिक समाजशास्त्र उपागम का प्रयोग करते समय मुख्यत: शक्ति के वितरण के सामाजिक आधार पर ध्यान केन्द्रित किया जाता है। इसके साथ यह मान्यता जुड़ी है कि किसी भी समाज में राज्य व्यवस्था की संरचना वहां के सामाजिक संगठन से निर्धारित होती है। इसी सन्दर्भ में वेबर का मुख्य सन्देश यह था कि ''किसी भी राजनीतिक प्रणाली के अन्तर्गत शक्ति के सामाजिक आधार का पता लगाने के लिए वहां प्रचलित सत्ता की प्रकृति पर ध्यान देना चाहिए।''

तुलनात्मक राजनीति के समाजशास्त्रीय उपागम ने राजनीति के अर्न्तविषयक अध्ययन को बढ़ावा दिया। यह उपागम अपनी राजनीति के क्षेत्र में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है लेकिन इस उपागम की कुछ सीमाएं भी हैं। इस उपागम के आधार पर हम राजनीति को पूरी तरह समाजशास्त्रीय रूप में नहीं देख सकते।

राजनीति को पूरी तरह इस पर आधारित नहीं कहा जा सकता। राजनीति में यह राजनीति की परछाई तो बन सकता है उसकी नींव नहीं। बिना राजनीति के इस विज्ञान में इस उपागम को पूरी तरह एक महत्वपूर्ण स्तंभ नहीं माना जा सकता। इन सब सीमाओं के बावजूद यह उपागम अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। राजनीति विज्ञान में इस उपागम को और अधिक मजबूत बनाया जाये, इस उपागम का राजनीति विज्ञान में अपना अनूठा योगदान रहा है, प्रस्तुत सुझावों के आधार पर इस उपागम को और अधिक सार्थक बनाने की आवश्यकता है जिससे एक मजबूत सम्बन्ध स्थापित हो।

प्र. पारराष्ट्रीय कर्ताओं के संदर्भ में, आधुनिक राज्य की बदलती हुई प्रकृति का विवेचन कीजिए।
(सिविल सेवा मुख्य परीक्षा, 2017)

उत्तर: आधुनिक युग में राष्ट्र व राज्य प्राय एकाकार हो गये हैं। राज्य की सीमाओं को राष्ट्रीय सीमाएं कहा जाता है। राज्य के हित को राष्ट्रहित कहा जाता है और विभिन्न राज्यों के परस्पर सम्बन्धों को राष्ट्रीय हित कहा जाता है। राष्ट्र राज्य में वहां के सभी निवासी आ जाते हैं, चाहे वे किसी भी जाति, धर्म भाषा या संस्कृति इत्यादि से सम्बन्ध रखते हों। शर्त यह है कि अपने सामान्य इतिहास, सामान्य हित व सामान्य जीवन के महत्व के प्रति सजग हो और एक केन्द्रीय सत्ता के प्रति निष्टा रखते हैं। वस्तुत: आधुनिक राष्ट्र राज्य का विकास मानव सभ्यता के बहुत बड़े विकास की परिणति है।

पन्द्रहवी और सोलहवी शताब्दी से यूरोप में राष्ट्र राज्यों का उदय हुआ। आज भिन्न-भिन्न राज्य प्रणालियां अस्तित्व में आ रही हैं। आज 21वीं सदी के आरम्भ में ऐसे नये संगठन की तलाश शुरू हो गई है जो मानवता की आशाओं आकांक्षाओं को पूरा करने में कुशल हो। आज राज्य की परिभाषा बदल रही है। विश्व के अनेक भागों में ऐसे समुदाय विद्यमान है जो सामान्य संस्कृति सामान्य भाषा और सामान्य धर्म के आधार पर परस्पर एकता अनुभव करते हैं और राष्ट्रीय एकता का दम भरते हैं लेकिन अपने परस्पर हितों को महत्व देते हैं। राष्ट्रीय हित किसी भी राष्ट्र का सर्वोपरि हित है।

आज विश्व में क्रान्तिकारी परिवर्तन आ रहा है। आज विश्व स्तर पर अन्तर्राष्ट्रीय अभिनेता अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहे हैं क्योंकि ये अभिनेता अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में अपनी कुशलता व नेतृत्व से दिशा व दशा बदल देते है। नेहरू, गोर्बच्योब मार्शल टीटो जैसे अभिनेताओं ने आधुनिक राज्य की तरफ बढ़ते एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाई आज राज्य की प्रकृति बदल रही है। आज लोग राजनीतिक महत्व के साथ-साथ आर्थिक महत्व की तरफ भी अपना झुकाव करते जा रहे हैं जिससे वह अपने राष्ट्र का सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक व पर्यावरणीय विकास को एक नई दिशा व दशा दे सके।

आधुनिक राज्य एक वृहत संकल्पना है। आज के वैश्विक परिदृश्य में राज्य की अवधारणा विकसित हो रही है। आज राज्य की प्रकृति बदल रही है। आज के सन्दर्भ में परराष्ट्रीय कायकर्ता अपने राष्ट्र को मजबूती के लिए विश्व परिदृश्य में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहे हैं।

प्र. तुलनात्मक राजनीति के अध्ययन में राजनीतिक अर्थशास्त्रीय उपागम के मार्क्सवादी दृष्टिकोण का समालोचनात्मक परीक्षण कीजिये। (सिविल सेवा मुख्य परीक्षा, 2016)

उत्तर: कार्ल मार्क्स और फ्रैड्रिक एंगेल्स तथा उनके अनुयायियों ने राजनीतिक अर्थव्यवस्था के उदारवादी दृष्टिकोण को चुनौती देते हुए यह तर्क दिया कि पूंजीवादी अर्थव्यवस्था कोई विश्वजनीन और अंतिम रूप से प्रामाणिक व्यवस्था नहीं है। उत्पादन के साधनों और उत्पादन की शक्तियों के विकास के साथ-साथ उत्पादन प्रणाली में परिवर्तन होते हैं। पूंजीवाद एक युग-विशेष की उत्पादन प्रणाली है। इसे सदा सर्वदा नहीं चलते रहना है बल्कि अपने अंतर्विरोधों के कारण ध्वस्त हो जाना है। मार्क्सवादी विचारक राजनीति को मानव जीवन की मौलिक या स्वायत् गतिविधि नहीं मानते। उनके विचार से किसी भी देश और किसी भी युग की राजनीति वहां की अर्थव्यवस्था के साथ निकट से जुड़ी रहती है। राजनीति के सम्बन्ध में मार्क्सवादी विश्लेषण तीन मान्यताओं पर आधारित है-

(i) समाज के सदस्य अलग-अलग व्यक्तियों के रूप में अपने हित-साधन के उद्देश्य से नागरिक समाज का संगठन करते हैं। अत: नागरिक समाज व्यक्तियों के स्वार्थ-साधन का क्षेत्र है। नागरिक जीवन ही समाज के सदस्यों को आपस में बांधने वाला सूख है, राजनीतिक जीवन नहीं। यदि हम राजनीति पर अपना ध्यान केन्द्रित करेंगे तो हम समाज के अंतर्विरोधों पर ध्यान नहीं दे पाएंगे और वर्ग संघर्ष के अस्तित्व को भी नहीं पहचान पाएंगे।

वैश्वीकरणः विकसित और विकासशील समाजों के जबाव

प्र. क्या विकासशील समाजों में वंचितों की राजनीतिक प्रक्रिया में बढ़ती हुई भागीदारी ने प्रजातंत्र को सुदृढ़ता प्रदान की है या इससे राजनीतिक अराजकता एवं संघर्ष की स्थिति उत्पन्न हुई है? टिप्पणी कीजिए।

(सिविल सेवा मुख्य परीक्षा, 2020)

प्रश्न की मांग: विकासशील समाजों में वंचितों की बढ़ती भागीदारी का स्पष्ट आकलन करना है।

उत्तर: वंचितों के राजनीतिकरण हेतु संवैधानिक प्रावधानों के तहत संसद-विधानसभाओं तथा शैक्षिक स्तर पर नामांकन एवं सरकारी नौकरियों में दिये जाने वाले आरक्षण की वजह से साठ के दशक तक वंचितों द्वारा सामाजिक-राजनीतिक स्तर पर काफी तरक्की अर्जित की गयी। संविधान की धारा 330-332 के अन्तर्गत संसद तथा राज्य की विधानसभाओं के निर्वाचन क्षेत्रों में आरक्षण तथा संविधान के अनुच्छेद 15(4) तथा 16(4) के तहत सरकारी नौकरियों और शिक्षण संस्थाओं में नामांकन हेतु दिये जाने वाले आरक्षण की सुविधा की वजह से संविधान द्वारा आरक्षित निर्वाचन क्षेत्रों के अतिरिक्त अन्य सीटों पर भी इन वंचितों के राजनीतिक लेन-देन की ताकत में काफी वृद्धि हुई। इन वंचितों के पुरोधाओं को राजनीतिक सौदेबाजी तथा राजनीतिक गठजोड़ों में तरजीह मिलना तथा सक्षम लोगों के नेताओं द्वारा चुनाव में जीत के लिए इन वंचितों का समर्थन प्राप्त करने की होड़ साठ-सत्तर के दशक की सक्रिय राजनीति में, इनकी राजनीतिक हैसियत से ज्यादा इन्हें महत्त्व प्रदान करने जैसी बात थी। संवैधानिक तथा राजनीतिक स्तर पर मिलने वाला लाभ सामाजिक स्तर पर इन वंचितों के पिछड़ेपन की कमी की भरपाई कर रहा था। अपनी राजनीतिक हैसियत में बढ़ोतरी और समुन्नत सामाजिक जीवन जीने की जिजीविषा लिए पृथक् संगठनों, महासंघों तथा जाति आधारित राजनीतिक दलों के निर्माण का प्रचलन आरंभ हुआ।

संविधान द्वारा प्रदत्त राजनीतिक हैसियत की वजह से वंचित समूहों की जातिगत दावेदारियों के बावजूद सामाजिक स्तर पर अतिपिछड़ा होने के नाम पर उन पर जातिवादी होने का आरोप भी नहीं लगाया जा रहा था। इन वंचितों को खुश करने के लिए इनका हितैषी होने का प्रमाण प्रस्तुत करने की होड़ सभी दलों में मच गयी। अपनी पार्टी को ज्यादा सेकुलर साबित करने के लिए धीरे-धीरे सभी राष्ट्रीय एवं क्षेत्रीय पार्टियों में संगठन के स्तर पर इनके लिए अलग प्रकोष्ठ का निर्माण किया गया।

इस कार्य द्वारा सभी दलों में इन जातियों के राजनीतिक महत्त्व को जातिगत आधार पर आंका गया और उन्हें राजनीतिक तरजीह दी गयी। इन प्रयासों से जहां एक ओर व्यवस्था में इन जातियों की राजनीतिक मान्यता तथा राजनीति में इनकी विशिष्टता स्थापित हुई, वहीं दूसरी ओर संवैधानिक स्तर पर विशेष राजनीतिक-सामजिक सुविधाओं के प्राप्तकर्ता होने की वजह से बड़े पैमाने पर इनका राजनीतिकरण हो गया और ये समसामयिक समाज के आधुनिक केंद्रों से सीधे रूप में जुड़ गये।

भारतीय राजनीति के सामाजिक आधारों में वंचित अर्थात जाति सर्वाधिक महत्वपूर्ण कारक है। यद्यपि राजनीति अपने आप में विग्रह की प्रणाली है। फिर भी यह सत्य है कि वंचित वर्ग राजनीतिक एकीकरण का औजार भी है, जिसके लिए राजनीति के पास अपनी शैली और संगठन का अपना तरीका है। जब वंचित और राजनीति के समुच्चय कारक और विभाजक कारक दोनों पक्ष क्रियाएं करते हैं तो कई अवस्थाओं में एकीकरण और विभाजन का नया चेहरा सामने आता है। वस्तुतः यही प्रक्रिया भारतीय समाज में राजनीति द्वारा लाए गए बदलाव को जानने समझने का मुख्य नजरिया भी है।

प्र. दक्षिण वैश्विक राष्ट्रों के परिप्रेक्ष्य से उन पर पड़नेवाले वैश्वीकरण की प्रक्रिया के प्रभावों का समालोचनात्मक परीक्षण कीजिए। (सिविल सेवा मुख्य परीक्षा, 2020)

प्रश्न की मांग: दक्षिण के राष्ट्रों पर वैश्वीकरण के सकारात्मक और नकारात्मक प्रभावों का विश्लेषण करना है।

उत्तर: वैश्वीकरण को एक चल रही प्रक्रिया के रूप में भी परिभाषित किया जा सकता है, जिसके द्वारा क्षेत्रीय अर्थव्यवस्थाओं, समाजों और संस्कृतियों को संचार और व्यापार के एक विश्व-व्यापी नेटवर्क के माध्यम से एकीकृत किया गया है। वैश्वीकरण की प्रक्रिया में कई कारक शामिल हैं जो तेजी से प्रौद्योगिकी विकास कर रहे हैं जो वैश्विक संचार को संभव बनाते हैं, राजनीतिक विकास जैसे कि साम्यवाद का पतन, और परिवहन विकास जो तेजी से और अधिक बार यात्रा करते हैं। ये अतिरिक्त बाजारों के उद्घाटन के साथ कंपनियों के लिए अधिक विकास के अवसर पैदा करते हैं, साझा सांस्कृतिक मूल्यों में वृद्धि के परिणामस्वरूप अधिक से अधिक ग्राहक सामंजस्य स्थापित करने की अनुमति देते हैं, और अन्य देशों में कम परिचालन लागत और नए कच्चे माल तक पहुंच के साथ एक बेहतर प्रतिस्पर्धी स्थिति प्रदान करते हैं, संसाधन, और निवेश के अवसर ।

सकारात्मक प्रभाव

दक्षिण के राष्ट्रों में ग्लोबलाइजेशन के सबसे अधिक दिखाई देने वाले सकारात्मक प्रभावों में से एक है ग्लोबली प्रतिस्पर्धा के कारण उत्पादों की गुणवत्ता में सुधार।

ग्राहक सेवा और ग्राहक उत्पादन के लिए कंपनी का दृष्टिकोण है, जिससे उत्पादों और सेवाओं की गुणवत्ता में सुधार हुआ है। जैसा कि घरेलू कंपनियों को विदेशी प्रतिस्पर्धा से बाहर रहना पड़ता है, वे बाजार में जीवित रहने के लिए अपने मानकों और ग्राहकों की संतुष्टि के स्तर को बढ़ाने के लिए मजबूर होते हैं। दूसरे दक्षिण के राष्ट्रों में विदेशी निवेश भी एक पहलू है, जिससे स्थानीय स्तर पर प्रतिस्पर्धा का माहौल कायम हुआ है। वैश्वीकरण के परिणामस्वरूप विकासशील देशों के लोगों की जीवन प्रत्याशा दोगुनी हो गई है तथा शिशु मृत्यु दर घट गई है।

नकारात्मक प्रभाव

भूमंडलीकरण ने विकासशील देशों में गरीबी में कमी लाने में भूमिका निभाई। डीड में अधिकांश विकसित देशों ने गरीबी रेखा से नीचे रहने वाले अपने अनुपात में गरीबी में कमी का अनुभव किया, जिसमें चीन, भारत, वियतनाम जैसे तेजी से विकासशील देश शामिल हैं। जबकि अन्य देशों जैसे उप-सहारा अफ्रीका ने एक विपरीत प्रवृत्ति दर्ज की। वैश्वीकरण दुनिया की बेरोजगारी की स्थिति के लिए एक दोष है हालांकि यह कुछ नौकरियों के अवसरों को लाया। इस तथ्य के बावजूद कि इसने नौकरियों के अवसरों को वैश्विक स्तर पर पहुंचाया लेकिन यह अभी भी मौजूदा स्थिति के लिए एक दोष है। उदाहरण के लिए, इंडोनेशिया ने बेरोजगारी और गरीबी का सामना किया, जो दो दशकों में अनुभव नहीं होने के स्तर तक बढ़ गया, स्वास्थ्य की स्थिति खराब हो गई, और प्राकृतिक वातावरण खराब हो गया।

निष्कर्ष

वैश्वीकरण के पररणामस्वरूप राष्ट्रीय राज्य की अवधारणा में परिवर्तन आने लगा है। लोककल्याणकारी राज्य का स्थान न्यूनतम अहस्तक्षेपकारी राज्य ने ले लिया है। वैश्वीकरण का प्रभाव चीन, भारत व ब्राजील जैसे विकासशील देशों पर पड़ा है किन्तु वैश्वीकरण का सर्वाधिक लाभ विकसित देशों को प्राप्त हुआ है।

प्र. विकासशील राष्ट्रों द्वारा नव अंतरराष्ट्रीय अर्थव्यवस्था [न्यू इंटरनेशनल इकनॉमिक ऑर्डर (एन.आइ. ई.ओ.)] की मांग की सार्थकता एवं महत्व की व्याख्या कीजिए। क्या ये भावी भविष्य में एन.आइ.ई.ओ. के उद्देश्यों को प्राप्त कर सकते हैं? (सिविल सेवा मुख्य परीक्षा, 2020)

प्रश्न की मांग: नव अंतर्राष्ट्रीय आर्थिक क्रम का उदेश्य
- विकासशील देशों द्वारा नव अंर्राष्ट्रीय आर्थिक व्यवस्था की मांग के बारे में बताना है; सारगर्भित निष्कर्ष पर पहुंचना है।

उत्तर: नई अंतरराष्ट्रीय अर्थव्यवस्था का उद्देश्य

नई अन्तर्राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था की स्थापना का प्रमुख उद्देश्य वर्तमान भेदभावपूर्ण आर्थिक सम्बन्धों का निर्धारण नए सिरे से करना है। नई अन्तर्राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था के समर्थक देशों का मानना है कि विकसित और विकासशील देशों में गहरी आर्थिक असमानता है। वर्तमान व्यवस्था धनी या विकसित देशों के हितों की ही पोषक है। नई अन्तर्राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था का उद्देश्य वर्तमान व्यवस्था को समाप्त करके इसे न्यायपूर्ण व समान बनाना है ताकि यह विकासशील देशों के भी हितों की पोषक बन जाए। इसका प्रमुख ध्येय नव-उपनिवेशवाद को समाप्त करके अंतर्राष्ट्रीय आर्थिक संस्थाओं को अधिक तर्कसंगत बनाना है ताकि थोड़े से विकसित देशों द्वारा बड़ी संख्या वाले विकासशील देशों के आर्थिक शोषण को रोका जा सके।

नई अन्तर्राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था की मांग के निर्धारक तत्व

नवोदित स्वतन्त्र राष्ट्रों ने अंतर्राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था को नए ढंग से स्थापित करने की जो पुरजोर मांग की है, उसके पीछे कुछ ठोस कारण हैं। नई अंतर्राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था की मांग को जन्म देने वाले प्रमुख कारण हैं-

- आज राजनीतिक रूप से देखने में तो विकासशील देश प्रभुसत्ता सम्पन्न हैं लेकिन व्यवहार में विकसित देशों द्वारा नव उपनिवेशीय नियंत्रण के रूप में उनकी राजनीतिक क्रियाओं में पूरा हस्तक्षेप है। आज नव उपनिवेशवाद के अंतर्गत सैनिक सहायता, बहुराष्ट्रीय निगम, संरक्षणवादी व्यापार, संधियों में साझेदारी, हस्तक्षेप आदि साधनों द्वारा विकसित राष्ट्र विकासशील देशों को अपनी आर्थिक नीतियों का शिकार बना रहे हैं। आज डब्ल्यूटीओ, आईएमएफ जैसी विश्व आर्थिक संस्थाएं भी इन विकसित देशों के हितों की ही पोषक हैं। इसलिए इस नव-उपनिवेशीय नियंत्राण को विकासशील राष्ट्र समाप्त करने की दिशा में ठोस उपाय कर रहे हैं। दक्षिण-दक्षिण सहयोग के प्रयास करना इसी का परिणाम है।
- अमेरिका, ब्रिटेन, फ्रांस, जापान आदि विकसित देशों के 800 बड़े बड़े बहुराष्ट्रीय निगम विकासशील देशों में विकसित राष्ट्रों की भुजा के रूप में कार्य कर रहे हैं। विकासशील देशों में पूंजी निवेश करके इनको कई गुणा मुनाफा प्राप्त हो रहा है। समस्त विश्व के कुल उत्पादन के 50 प्रतिशत से अधिक भाग पर इनका ही कब्जा है। विकसित देशों की विकसित तकनीक इनका प्रमुख साधन है। जिसके बल पर ये विकासशील देशों में कच्चे माल को तैयार माल में बदलकर वही मंडियों में बेचकर भारी लाभ प्राप्त कर रहे हैं। भारत जैसे अति विकासशील देश भी इनके जाल में फंसते जा रहे हैं। इसलिए विकासशील देश बहु-राष्ट्रीय निगमों की शोषणकारी भूमिका को समाप्त करने के उद्देश्य से नई अंतराष्ट्रीय अर्थव्यवस्था (एनआईईओ) की मांग करते हैं।
- आज उत्तर-दक्षिण में गहरी खाई है। उत्तर के विकसित देश जो 30 प्रतिशत जनसंख्या वाले हैं, विश्व के 70 प्रतिशत जनसंख्या वाले विकासशील देशों अर्थात दक्षिण पर अपना आर्थिक वर्चस्व कायम किए हुए हैं। विकासशील देशों की प्रति व्यक्ति वार्षिक आय औसतन 100 पौंड है, जबकि विकसित देशों में यह 3000 से 6000 पौंड तक है। आज विकासशील देशों में आर्थिक विकास के नाम पर गरीबी, भुखमरी, भ्रष्टाचार जैसी समस्याएं विद्यमान हैं, जबकि विकसित देश विलासितापूर्ण जीवन जी रहे हैं। विकासशील देशों की यही मांग है कि विश्व अर्थव्यवस्था का नए रूप में गठन हो ताकि विकसित व विकासशील देशों में पैदा हुई गहरी खाई को पाटा जा सके। अर्थात् नई अंतर्राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था की स्थापना ही विकसित राष्ट्रों द्वारा विकासशील देशों का आर्थिक शोषण रोककर उत्तर दक्षिण के अन्तर को कम कर सकती है।
- आज अंकटाड, आईएमएफ, डब्ल्यूटीओ तथा विश्व बैंक जैसी अंतर्राष्ट्रीय आर्थिक संस्थाएं भी उत्तर और दक्षिण के बीच के अन्तर को कम करने में नाकामयाब रहे हैं। बल्कि इनकी आड़ में विकसित देश विकासशील देशों की आर्थिक नीतियों को प्रभावित करके अपने आर्थिक हितों को ही पोषित करते हैं। ये संस्थाएं ही उनके आर्थिक साम्राज्यवाद को सुदृढ़ बनाती हैं और विश्व के आर्थिक साधनों को एक पक्षीय झुकाव में सहायता करती है। इससे तृतीय विश्व के देशों का आर्थिक शोषण बढ़ जाता है और एनआईईओ की मांग का उदय होता है।